सम्पादकीय

पुलवामा त्रासदी, युद्धोन्माद और चुनाव

10 मार्च को चुनाव आयोग ने अप्रैल से मई तक 7 चरणों में लोकसभा चुनाव की घोषणा की। उसी दिन विदेश मंत्री सुषमा स्वराज ने अपनी पार्टी के कार्यकर्ताओं की सभा में यह संकेत दिया कि पुलवामा आतंकी हमले के बाद पाकिस्तान के खिलाफ सैन्य कार्रवाई भाजपा का चुनावी मुद्दा होगा। इसमें अचरज की कोई बात नहीं, क्योंकि आर्थिक मोर्चे पर पूरी तरह विफलता, तीन राज्यों के चुनाव में पार्टी की पराजय और राफेल सौदे को लेकर विवादों में घिरे नरेन्द्र मोदी और भाजपा के तमाम नेता चुनाव की घोषणा से पहले ही इस त्रासद घटना को लेकर युद्धज्वर फैलाने में जुटे हुए थे। मीडिया और टीवी चैनल देश की तमाम बुनियादी समस्याओं को दरकिनार करते हुए सत्ताधारी पार्टी के मंसूबे को आगे बढ़ाने में रात-दिन एक किये हुए थे।

दिसम्बर 2018 में हुए विधान सभा चुनावों में राजस्थान, मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ में भाजपा की हार से यह साफ हो गया था कि नरेन्द्र मोदी ने जनता से जो वादाखिलाफी की, उसकी वजह से जनता में भारी असन्तोष व्याप्त है। दलितों-अल्पसंख्यकों पर आये दिन होनेवाले जानलेवा हमलों को लेकर उत्पन्न गुस्सा, विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में शिक्षकों की नियुक्ति प्रक्रिया को लेकर पिछड़ा वर्ग, दलितों और आदिवासियों का आक्रोश, नोटबन्दी की आम जनता पर मार, जीएसटी के कारण छोटे करोबारियों की तबाही, कृषि लागत की कीमतों में वृद्धि और फसल की उचित कीमत न मिलने से उत्पन्न किसानों में असन्तोष और देश-भर में किसान आन्दोलनों का फूट पड़ना, बेरोजगारी का अपनी सारी सीमाएँ लाँघ कर काफी ऊँचाई पर पहुँच जाना, श्रम कानूनों में बदलाव और छँटनी-तालाबन्दी को लेकर मजदूरों के उग्र आन्दोलन, इन सबको देखते हुए उनके लिए लोकसभा चुनावों में जनता का सामना करना काफी मुश्किल हो गया।

जनता के विभिन्न तबकों के बीच से उठने वाली असन्तोष की इस लहर के आगे अब मोदी लहर का कहीं अता-पता नहीं। ऐसे में जनता के बुनियादी मुद्दों पर पर्दा डालने के लिए गैरजरूरी मुद्दे उछालने की कवायद, मसलन जाति-धर्म के झगड़े भी काम नहीं आ रहे थे। तब संघ से जुड़े संगठनों ने राम मन्दिर के अपने पुराने आजमाये हुए मुद्दे को फिर से उभारने का जोरदार प्रयास शुरू किया। हालाँकि राम मन्दिर पर सियासत का सिलसिला अभी जारी है, लेकिन जल्दी ही लोगों को यह बात समझ में आ गयी कि इनका राम मन्दिर प्रेम सिर्फ चुनाव जीतने का एक हथकण्डा है। जब इस मुद्दे को लेकर लोगों में कोई उत्साह दिखाई नहीं दिया, तो नये मुद्दे की तलाश शुरू हुई। पाकिस्तान के साथ तनाव और युद्ध का माहौल बनाकर राष्ट्रवाद और देशभक्ति की लहर पैदा करके चुनावी वैतरणी पार करने की सम्भावना को लेकर राजनीतिक हलकों में चर्चा हो रही थी। पुलवामा में सुरक्षा बलों के काफिले पर आतंकी हमला, जिसमें अर्ध सैनिक बल के 40 से ज्यादा जवानों की मौत हुई, उसके बारे में दुनिया के तमाम अखबारों राजनीतिक समीक्षकों ने सरकार के क्रिया-कलाप पर सन्देह जताया है। नेशनल कॉन्फ्रेंस के उमर अब्दुला और भाजपा के सहयोगी दल शिवसेना ने बयान दिया कि पुलवामा घटना का इस्तेमाल मोदी अपने राजनीतिक लाभ के लिए कर रहे हैं। उनकी बातों की पुष्टि खुद भाजपा नेता येदुरप्पा के उस बयान से भी होती है कि पुलवामा के चलते भाजपा को कर्नाटक में 20 सीटें मिलेंगी।

14 फरवरी को पुलवामा हमला हुआ, जबकि 8 फरवरी को ही सरकार को खुफिया जानकारी मिल गयी थी कि कोई आतंकवादी हमला हो सकता है। जम्मू कश्मीर के राज्यपाल ने भी आतंकी हमले में खुफिया विफलता और चूक को स्वीकार किया। सरकार से यह माँग की गयी थी कि अर्ध सैनिक बलों को सड़क मार्ग से न भेजकर हवाई मार्ग से भेजा जाये, लेकिन इस पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। साथ ही अब से कुछ महीने पहले तक जब कभी जिस समय सुरक्षा बलों का काफिला गुजरता था उस समय असैनिक वाहनों की आवाजाही पर रोक होती थी। पिछले दिनों यह रोक हटा ली गयी, जिसके चलते विस्फोटकों से लदी स्कोर्पियों लेकर फिदायिन काफिले तक पहुँच गया। निश्चय ही अब तक के सबसे बड़े हमले में खुफिया विफलता और भारी चूक हुई है, जिसे जम्मू कश्मीर के राज्यपाल सत्यपाल मलिक ने भी स्वीकार किया है। नतीजतन भारत के 40 से भी अधिक जवानों की जान चली गयी।

इस शर्मनाक और दुर्भाग्यपूर्ण त्रासदी के कारणों की जाँच हो रही है और इसके नतीजे भी सामने आयेंगे। लेकिन यह सच्चाई किसी से छिपी नहीं है कि इस घटना के बाद चुनावी मुद्दा विहीन भाजपा को मनमाँगी मुराद मिल गयी। तीन राज्यों के विधान सभा

चुनावों में पराजय तथा चारों ओर से जनाक्रोश और सवालों में घिरी भाजपा ने अपनी हताश कतारों में नयी जान डालने के लिए सुरक्षाबल की दुखद मौत का भरपूर इस्तेमाल किया। गली-मुहल्लों में तिरंगा यात्रा और पुतला फूँकने का कार्यक्रम शुरू हुआ। केन्द्र में खुद भाजपा की सरकार और राज्य में राष्ट्रपति शासन होने के चलते देशभक्ति का यह ज्वार ज्यादा ऊँचा नहीं उठ पाया, लेकिन हिन्दू वोटों के ध्रुवीकरण का पुराना नुस्खा एक बार फिर आजमाया गया। हमले के बाद पूरे देश में पाकिस्तान के खिलाफ वातावरण तैयार किया गया। शहीदों को श्रद्धांजलि देने वाली जुलूसों में न केवल पाकिस्तान के खिलाफ, बल्कि आम मुसलमानों और कश्मीरी अवाम के खिलाफ भी उन्मादी नारे लगाये गये।

नतीजतन कई जगह साम्प्रदायिक उकसावे और तनाव का माहौल बना और कई शहरों में कश्मीर से आकर फेरी लगाने वाले छोटे व्यवसायियों और छात्रों पर हिन्दूवादी संगठनों से जुड़े लोगों ने हमले किये और उन्हें कॉलेज से निकालने तक का दबाव बनाया। कई भाजपा नेताओं के भड़काऊ बयानों ने इस आग में घी डालने का काम किया। पुलवामा काण्ड के एक सप्ताह बाद सरकार ने पाकिस्तान को दी गयी "मोस्ट फेवर्ड नेशन" की सुविधा खत्म कर दी और वहाँ से आने वाले सामानों पर 200 फीसदी शुल्क लगा दिया। इसके बाद पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर के मुजफ्फराबाद तक जानेवाली बस सेवा रद्द कर दी गयी। पाकिस्तान से अटारी बॉडर तक आनेवाली समझौता एक्सप्रेस और भारत की ओर से आनेवाली स्पेसल ट्रेन कुछ समय के लिए रद्द कर दिया गया। नितिन गडकरी ने सिन्धु नदी का पानी पाकिस्तान जाने से रोकने सम्बन्धित बयान भी दिया, जबकि सिन्धु जल का बँटवारा एक अन्तरराष्ट्रीय सन्धि के अधीन है, जिसे एकतरफा रोकना सम्भव नहीं है। युद्धोन्माद का माहौल बनाने और उसका लाभ उठाने के लिए मोदी सहित तमाम नेता चुनावी सभाओं में और कार्यकर्ताओं के साथ विडियो कान्फ्रेंसिंग में "हमारा बूथ, सबसे मजबूत" के साथ-साथ पाकिस्तान को सबक सिखाने के बारे में उग्र से उग्रतर लहजा अपनाते रहे। आखिरकार 26 फरवरी को भारतीय वायुसेना ने नियन्त्रण रेखा पार करके जैश-ए-मोहम्मद के शिविरों पर बम गिराये। पाकिस्तान के सैनिक प्रवक्ता ने इसकी पुष्टि की। इसके जवाब में 27 फरवरी को पाकिस्तानी वायुसेना के विमानों ने भारतीय सीमा में प्रवेश किया और जम्मू-कश्मीर के बड़गाँव में भारतीय सेना का एक विमान मार गिराया गया। पाकिस्तान का एक विमान भी नौसेरा सेक्टर में मार गिराया गया। पाकिस्तान ने दावा किया कि उसने वायु सेना के दो विमानों को मार गिराया और एक पायलट को बन्दी बना लिया। बाद में भारतीय पायलट अभिनन्दन वर्धमान को पाकिस्तान ने रिहा कर दिया।

निश्चय ही, इस समूचे घटनाक्रम के दौरान चुनाव से ठीक पहले का माहौल युद्ध के उन्माद में डूबता गया। इस युद्धोन्माद को फैलाने में मीडिया और खासकर टीवी चैनलों ने बढ़-चढ़कर भूमिका निभायी। विदेश मंत्रालय के प्रवक्ता ने यह नहीं बताया था कि पाकिस्तान पर हवाई हमले में कितने लोग मारे गये। भारतीय सेना के एक उच्च अधिकारी का कहना था कि हमारा काम लक्ष्य पर निशाना लगाकर हमला करना है, लाशें गिनना नहीं। लेकिन टीवी चैनलों ने खुद ही 300 लोगों की मौत का आँकड़ा पेश कर दिया, जबकि अमित शाह 250 लोगों के मारे जाने तक ही सीमित रहे। इससे पहले टीवी चैनलों ने ही यह बताया था कि पुलवामा में 300 किलो विस्फोटक से गाड़ी ने आकर हमला किया। हवाई हमले में 1000 किलो बम गिराने की बात भी चैनलों ने ही की और एक विडियो गेम की क्लिपिंग दिखाकर उसे बालाकोट की तबाही का मंजर बताते रहे। सच तो यह है कि पुलवामा त्रासदी के बाद से ही ऐसा लग रहा था जैसे अधिकांश टीवी चैनलों का स्टूडियो युद्ध-भूमि में तब्दील हो गया हो।

यह निर्विवाद सच्चाई है कि भारतीय सेना ने नियंत्रण रेखा को पारकर पाकिस्तान में हवाई हमला किया, लेकिन इससे सम्बन्धित दुनिया भर के तमाम संवाददाताओं की रिपोर्टों में आतंकी शिविर ध्वस्त होने या किसी के मारे जाने की खबर नहीं है। न्यूयार्क टाइम्स, वाशिंगटन पोस्ट, डेली टेलीग्राफ, गार्जियन, रायटर समाचार ऐजेन्सी, गल्फ न्यूज, लन्दन का जेन्स इन्फॉर्मेशन ग्रुप, सबकी खबरें यही बताती हैं। इस तरह की किसी भी घटना के बाद दुनियाभर की समाचार एजेंसियाँ घटनास्थल पर जाकर और सेटेलाइट सहित तमाम स्रोतों से पता लगाती हैं कि वास्तविकता क्या है। कोई एक या दो एजेंसी पूर्वाग्रह ग्रसित और गलत हो सकती है, लेकिन ऐसा कैसे हो सकता है विश्व स्तर के तमाम सूचना माध्यम अविश्वसनीय हों। लेकिन भारत के समाचार चैनलों द्वारा फैलायी गयी बेबुनियाद बातों पर सवाल उठाना भी आज देशद्रोह हो गया है। यह युद्धज्वर के बेकाबू हो जाने का ही लक्षण है।

युद्धोन्माद और चुनावी लाभ के लिए उसके इस्तेमाल ने कश्मीर समस्या के समाधान पर किसी सार्थक वाद-विवाद को किनारे कर दिया। यही नहीं, दो देशों के बीच इस अन्दरूनी समस्या में बाहरी हस्तक्षेप भी प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से लगातार बढ़ा है। पुलवामा के बाद अमरीका द्वारा बीच-बचाव करना और दोनों देशों के नेताओं को सलाह-मशवरा देना इसी बात का संकेत है। इसी सन्दर्भ में पुलवामा घटना के ठीक बाद सऊदी अरब के प्रिंस मोहम्मद बिन सलमान का पहले पाकिस्तान जाकर वहाँ अरबों डॉलर के निवेश और आर्थिक सहायता के समझौते करना और फिर भारत में मोदी द्वारा उनका भव्य स्वागत और व्यापारिक

समझौता किया जाना भी उल्लेखनीय है। दुनिया जानती है कि सऊदी अरब दुनियाभर के तमाम आतंकवादी संगठनों को धन मुहैया करता है तथा खाड़ी देशों में अमरीकी वर्चस्व और आक्रामक सैन्य रणनीति को बढ़ावा देता है। दूसरे, जिन दिनों भारत में युद्धोन्माद और साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण को उकसाया जा रहा था, उसी दौरान मुस्लिम देशों के संगठन 'इस्लामिक सहयोग संगठन' के सम्मेलन में विदेश मंत्री सुषमा स्वराज विशेष अतिथि के रूप में शामिल हुईं। इसी की वजह से पाकिस्तान ने उस सम्मेलन का बहिष्कार किया। सुषमा स्वराज के भाषण के अगले ही दिन उस सम्मेलन में जो प्रस्ताव पास हुआ, उसमें कश्मीर के मुद्दे पर पाकिस्तान के पक्ष का समर्थन किया गया तथा कश्मीर में भारतीय सेना की तैनाती और मानवाधिकार उल्लंघन की आलोचना की गयी। पाकिस्तान को अलगाव में डालने की इस नाकाम कोशिश और कूटनीतिक विफलता को यह कहकर छुपाया और भुनाया गया कि उस सम्मेलन में भारतीय विदेश मंत्री ने पहली बार भाषण दिया।

कैसी विडम्बना है, कैसा व्यंग्य है कि आतंकवाद की कमर तोड़ने की घोषणा से लेकर नोटबन्दी तक के जिन सवालों के लिए मोदी सरकार को कटघरे में खड़ा किया जाना था, उन्हें मीडिया रचित युद्धोन्माद, नकली देशभक्ति और छद्म राष्ट्रवाद ने मोदी की नाव को मझदार से निकालने का जरिया बना दिया और उन पर सवाल उठानेवालों को देशद्रोह घोषित करते हुए मोदी को आलोचना से परे एक मसीहा की मूर्ति बनाकर खड़ा कर दिया।

सैमुएल जॉनसन ने 1775 में कहा था कि "देशभक्ति दुरात्माओं की अन्तिम शरणस्थली है।" रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कहा था कि "देशभक्ति हमारा आखिरी आध्यात्मिक सहारा नहीं बन सकता, मेरा आश्रय मानवता है। मैं हीरे के दाम में काँच नहीं खरीदूँगा और जब तक मैं जिन्दा हूँ, मानवता के ऊपर देशभक्ति की जीत नहीं होने दूँगा।" देश कागज पर बना नक्शा मात्र नहीं, बल्कि वहाँ के निवासी होते हैं। अगर हम देश से प्यार करते हैं तो वहाँ के जनगण की जीवन-परिस्थिति, शोषण-उत्पीड़न, पीड़ा-व्यथा आदि से हमारा सरोकार होना चाहिए। हमारे देश की हालत आज क्या है? हमारी जनता जिसमें हम खुद भी शामिल हैं, उसे किन-किन समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है? उसे सम्मानजनक रोजी-रोजगार मिल रहा है, उसकी मेहनत का उचित मोल मिल रहा है, उसकी बुनियादी जरूरतों-- रोटी, कपड़ा, आवास, शिक्षा और इलाज की पूर्ति हो रही है? इन बुनियादी सवालों को देशभक्ति के धूल-गुबार में ढ़कने की साजिशों को समझना और इस उन्माद से खुद को बचाना आज हर जागरूक नागरिक का दायित्व है।

जहाँ तक युद्ध का प्रश्न है, नाभिकीय हथियारों से लैश दो देशों के बीच युद्ध का मतलब है-- दोनों देशों का महाविनाश। नाभिकीय प्रतिरोधकों के रहते युद्ध न तो लाजमी है, न ही मुमकिन। छिटपुट झड़पें दोनों देशों के शासकों के लिए अपनी जनता को भरमाने का आजमाया हुआ हड़कम्प है जिसे जरूरत के समय जारी रखा जा सकता। युद्धोन्माद देश के सामने मुँह बाये खड़े सवालों को दरकिनार करने का जरिया है। यह किसी समस्या का समाधान नहीं बल्कि खुद ही एक विकट समस्या है।

हम सभी नागरिकों को आज छद्म देशभक्ति और अन्धराष्ट्रवाद के शोर-सराबे के बीच अपने उन बुनियादी सवालों को उठाना चाहिए, जिन पर हमारा और हमारे देश का भविष्य निर्भर है। आखिर सुरक्षा में इतनी बड़ी चूक कैसे और कहाँ हुई जिसके चलते पुलवामा में घातक हमला हुआ? 2014 के बाद उरी, पठानकोट, पम्पोर, नागरोटा और सुजवान के सैनिक ठिकानों पर हुए आतंकी हमले से सरकार ने क्या सबक लिया? पिछले 5 वर्षों में कश्मीर समस्या पहले से भी विकराल क्यों होती गयी, जिसमें एसएटीपी के आँकड़ों के मुताबिक अब तक 355 सुरक्षाकर्मी, 882 आतंकवादी और 200 नागरिक मारे गये। क्या कश्मीर की जनता को अलगाव में डालकर, उनके प्रति नफरत फैलाकर, उन पर हमला करके कश्मीर समस्या का समाधान हो सकता है? पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा दिये गये "इन्सानियत, कश्मीरियत और जम्हूरियत" के नारे का क्या हुआ?

विकास, रोजगार और भ्रष्टाचार मिटाने का दावा और अच्छे दिन का वादा करके भाजपा सत्ता में आयी थी। लेकिन पाँच सालों के दौरान उसने अपने वादों के ठीक विपरीत काम किया। मनमोहन सिंह की जिन नवउदारवादी नीतियों के चलते देश की जनता तबाही की ओर धकेली गयी, मोदी सरकार ने उनको और अधिक बढ़-चढ़कर लागू किया। देश की सुरक्षा के नाम पर सरकार ने लफ्फाजी के सिवा कुछ नहीं किया। हर साल 2 करोड़ लोगों को रोजगार देना तो दूर, उल्टे हर साल लाखों नौकरियों में कटौती की गयी। नोटबन्दी और जीएसटी से लाखों लोगों को रोजी-रोजगार से उजाड़ा गया और बेरोजगारी दर पिछले 45 सालों में सबसे ऊपर पहुँच गयी। मजदूर यूनियनों पर बन्दिश, श्रम कानूनों में बदलाव और छँटनी-तालाबन्दी के चलते मजदूरों का जीना दूभर होता गया। किसानों की आमदनी डेढ़-दो गुनी करने की जगह लागत-खर्च में बढ़ोतरी की गयी, बिजली बिल बढ़ा, उर्वरकों पर सबसिडी कम करने से कीमतें बढ़ीं, जबकि कई फसलों की कीमत लागत से भी कम होती गयी। भ्रष्टाचार मिटाने और काला धन लाने की जगह बैंकों से हजारों करोड़ कर्ज लेकर एक के बाद एक विदेश भागने वाले माल्या और मोदियों को खुला रास्ता दिया गया। ओएनजीसी और बीएसएनएल सहित तमाम सरकारी उपक्रमों को तबाह किया गया। असहिष्णुता, कट्टरता, जाति-धर्म के झगड़े और भीड़ द्वारा हत्या का चलन बढ़ा। कुल मिलाकर हमारा देश आज पाँच साल

पहले की तुलना में कहीं ज्यादा आर्थिक संकट, सामाजिक तनाव और राजनीतिक पतन के गर्त में पहुँचा दिया गया है। इन समस्याओं से बचने और अपनी वादाखिलाफी से ध्यान हटाने के लिए सरकार द्वारा आज युद्धोन्माद का माहौल बनाया जा रहा है। वोटों के ध्रुवीकरण के लिए 'राष्ट्रवादी बनाम देशद्रोही' के नारे पर चुनाव लड़ने की बात हो रही है। क्या सचमुच हमारे देश की जनता आज देशप्रेमी और देशद्रोही के दो खेमे में बँट चुकी है? इन हवाई गोलों की जगह बुनियादी सवालों को केन्द्र में लाना आज बेहद जरूरी है।

यह भी सही है कि सभी पार्टियाँ उन्हीं नवउदारवादी नीतियों को स्वीकार कर चुकी हैं जो हमारी सभी समस्याओं का मूल कारण हैं। इसलिए चुनाव में किसी पार्टी की जीत-हार से आगे बढ़कर हमें इन जनविरोधी नीतियों के खिलाफ अपने बुनियादी हकों और बुनियादी बदलाव के सवाल पर लम्बी और निर्णायक की लड़ाई जारी रखना जरूरी है।

भगतसिंह ने कहा था--

लोगों को परस्पर लड़ने से रोकने के लिए वर्ग-चेतना की जरूरत है। गरीब मेहनतकशों व किसानों को स्पष्ट समझा देना चाहिये कि तुम्हारे असली दुश्मन पूँजीपति हैं, इसलिए तुम्हें इनके हथकण्डों से बचकर रहना चाहिये और इनके हत्थे चढ़ कुछ न करना चाहिये। संसार के सभी गरीबों के, चाहे वे किसी भी जाति, रंग, धर्म या राष्ट्र के हों, अधिकार एक ही हैं। तुम्हारी भलाई सी में है कि तुम धर्म, रंग, नस्ल और राष्ट्रीयता व देश के भेदभाव मिटाकर एकजुट हो जाओ और सरकार की ताकत अपने हाथ में लेने का यत्न करो। इन यत्नों में तुम्हारा नुकसान कुछ भी नहीं होगा, इससे किसी दिन तुम्हारी जंजीरे कट जायेंगी और तुम्हें आर्थिक स्वतन्त्रता मिलेगी।

पाठकों से अपील

- **'देश-विदेश' अंक 31 आपके हाथ में है। हमारा प्रयास है कि इसे अनियतकालीन पत्रिका की जगह हर तीन माह पर नियमित प्रकाशित किया जाये।**
- **जिन साथियों को पत्रिका निरन्तर डाक से भेजी जा रही है, वे कृपया सूचित करें कि उन्हें पत्रिका मिल रही है या नहीं और उन्हें आगे से भेजी जाये या नहीं।**
- **देश-विदेश अव्यवसायिक पत्रिका है। यह साथियों के श्रम और सहयोग से ही प्रकाशित होती है। आर्थिक संकट से जूझते हुए अब तक हमने 31 अंक निकाले। पाठकों के सहयोग से ही यह सम्भव हो पाया।**
- **पत्रिका अभी भी अनियमित है, इसलिए नियमित चन्दे की दर तय करना सम्भव नहीं। डाक से मँगवाने के लिए 4 अंकों की सहयोग राशि 100 रुपये या आजीवन सदस्यता न्यूनतम 1000 रुपये निम्नलिखित बैंक खाते में अन्तरित करें और इसकी सूचना एसएमएस या ईमेल से भेज दें।**

नाम : अतुल कुमार गुप्ता
मोबाइल नं. 9810104481
S.B. AC : 601510100024041
IFSC : BKID 0006015
बैंक ऑफ इंडिया,
जीटी रोड, शाहदरा, दिल्ली-32

मनी ऑर्डर भेजने का पता है-

अतुल कुमार गुप्ता
1/4649/45 बी, गली न. 4,
न्यू मॉर्डन शाहदरा
दिल्ली- 110032

सीबीआई विवाद : तोता से कारिन्दा बनाने की कथा

--प्रवीण कुमार

2013 में सर्वोच्च न्यायालय ने केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो (सीबीआई) को 'पिंजरे का तोता' कहा था। पिछले दिनों सीबीआई निदेशक आलोक वर्मा और विशेष निदेशक राकेश अस्थाना के बीच चले विवाद और वर्मा की सीबीआई से विदाई के दौरान जो तथ्य सामने आय हैं, उनसे पता चलता है कि सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणी बेहद अधूरी और पुरानी है। सरकार और सीबीआई के बीच के रिश्ते को परिभाषित करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय के साथ-साथ हमें भी कोई नया शब्द तलाशना पड़ेगा।

सीबीआई के दो सर्वोच्च अधिकारियों के बीच के इस विवाद में सर्वोच्च न्यायालय ने राकेश अस्थाना द्वारा आलोक वर्मा पर लगाये गये रिश्वतखोरी के आरोप और इस बारे में केन्द्रीय सतर्कता आयोग की रिपोर्ट को तथा निजी, सार्वजनिक परिवाद और पेंशन मंत्रालय द्वारा आलोक वर्मा की शक्तियाँ वापस ले लेने के आदेश को आधारहीन मानते हुए 8 जनवरी को आलोक वर्मा की सीबीआई निदेशक के पद पर बहाली का आदेश दिया था। साथ ही उन्हें हाई पावर्ड कमेटी (एचपीसी) से, वर्मा के उत्तराधिकारी के चुनाव का फैसला आने तक कोई भी नीतिगत फैसला नहीं लेने की हिदायत भी दी गयी थी।

एचपीसी प्रधानमंत्री, मुख्य न्यायाधीश और विपक्ष के नेता को मिलाकर बनायी गयी कमेटी होती है, जो सीबीआई निदेशक की सेवाओं से जुड़े फैसले लेती है। मुख्य न्यायाधीश ने हितों के सम्भावित टकराव से बचने के लिए अपने स्थान पर न्यायाधीश एके सीकरी को कमेटी में भेजा था। 10 जनवरी को एचपीसी ने आलोक वर्मा की भूमिका को सन्दिग्ध मानते हुए उन्हें सीबीआई निदेशक पद से हटाकर अग्निशमन सेवाएँ, नागरिक सुरक्षा और गृह रक्षक (होम गार्ड) का महानिदेशक नियुक्त कर दिया। इस फैसले पर कमेटी के तीनों सदस्य एकमत नहीं थे और विपक्ष के नेता मल्लिकार्जुन खड़गे ने इस फैसले के विरोध में राय दी। गौरतलब है कि आलोक वर्मा का कार्यकाल केवल 77 दिन ही बचा था। इस फैसले के बाद आलोक वर्मा ने 'तुमने गली कही, हम दुनिया छोड़ जाते हैं' की तर्ज पर स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति ले ली। उन्होंने सही फैसला लिया। वे कोई जन नेता नहीं थे, बल्कि व्यवस्था की मशीन का एक पुर्जा ही थे। इससे ज्यादा लड़ाई लड़ना उनके लिए सम्भव नहीं था। सीबीआई में उनकी आमद और जबरिया रुख्सत की कुछ खास घटनाओं ने सीबीआई, संसदीय लोकतंत्र की सड़ाँध और उसके अंगों के बीच की दूरभिसन्धियों का एक और उदाहरण उजागर कर दिया है।

1 दिसम्बर 2016 को सीबीआई के तत्कालीन निदेशक अनिल सिन्हा को सेवानिवृत्त होना था। माना जा रहा था कि परम्परागत रूप से उनका स्थान सीबीआई के विशेष निदेशक आर के दत्ता लेंगे, लेकिन उन्हें ठीक दो दिन पहले 30 नवम्बर को गृह मंत्रालय में स्थानान्तरित कर दिया गया। उनकी जगह उनके जूनियर, राकेश अस्थाना को अन्तरिम निदेशक बनाया गया। अस्थाना गुजरात कॉडर के आईपीएस अधिकारी थे और तेजी से तरक्की करके उस वक्त सीबीआई में सहायक निदेशक के पद पर तैनात थे। उन्हें प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी का 'ब्लू आइड ब्वाय' माना जाता है।

अस्थाना की नियुक्ति के खिलाफ वरिष्ठ अधिवक्ता प्रशान्त भूषण ने तभी एक याचिका सर्वोच्च न्यायालय में दाखिल कर दी। 17 दिसम्बर को इस याचिका पर फैसला देते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने सरकार के लिए सीबीआई निदेशक की नियुक्ति से सम्बन्धित दिशा-निर्देश जारी किये। डेढ़ महीने की उहापोह और कसरत के बाद 1 फरवरी को सरकार ने दिल्ली के तत्कालीन पुलिस कमिश्नर आलोक वर्मा को सीबीआई का निदेशक नियुक्त कर दिया।

राकेश अस्थाना की विशेष निदेशक के पद पर तरक्की के बारे में केन्द्रीय सतर्कता आयोग (सीवीसी) द्वारा 21 अक्टूबर 2017 को बुलायी गयी मीटिंग में आलोक वर्मा ने दर्ज कराया कि 'स्टर्लिंग वायोटेक' नाम की गुजरात की कम्पनी ने अस्थाना को 3.88 करोड़ रुपये का भुगतान किया है। इसके बावजूद भी सीवीसी ने अनमने ढंग से उनकी तरक्की को मंजूरी दी।

मार्च 2018 तक सीबीआई से जुड़ी कोई बड़ी घटना सतह पर नहीं आयी। 12 मार्च को सर्वोच्च न्यायालय ने एयरसेल मैक्सिम मामले में सीबीआई को 6 महीने के अन्दर जाँच पूरा करने का आदेश दिया। जाँच को बाधित करने के इरादे से 19 मार्च को

उपेन्द्र राय नाम के पत्रकार ने प्रवर्तन निदेशालय (ई डी) के संयुक्त निदेशक रामेश्वर सिंह जो इस मामले की जाँच कर रहे थे, द्वारा इस मामले में भारी रिश्वत लेने से सम्बन्धित एक याचिका सर्वोच्च न्यायालय में दायर की, जिसे न्यायालय ने खारिज कर दिया। बाद में सरकार ने राजेश्वर राय के सम्बन्ध किसी 'आईएसआई एजेंट' से होने की भी रिपोर्ट दी।

22 जून 2018 को ई डी के निदेशक कर्नल सिंह ने एक प्रेस कॉन्फ्रेन्स में बताया कि सरकार जिसे आईएसआई एजेंट बता रही है, उसने एक बहुत बड़े बैंक घोटाले के कागजात नागेश्वर राव को सौंपे थे। माना जाता है कि इस घोटाले के तार सरकार के चहेते वित्त एवं राजस्व सचिव हंसमुख अधिया से भी जुड़े थे। इसी दौरान उपेन्द्र राय को किसी व्यापारी से धन ऐंठने के मामले में गिरफ्तार कर लिया गया था। 27 जून को राजेश्वर सिंह ने हंसमुख अधिया के घोटालेबाजों के साथ मिले होने का पत्र राजस्व सचिव को लिखा।

कहा जाता है कि आलोक वर्मा ने इस मामले की जाँच करने की तैयारी कर ली थी। इसके साथ ही उनके और अस्थाना के बीच टकराव बहुत तेज हो गया। जुलाई 2018 में वर्मा ने अस्थाना के खिलाफ एक और शिकायत सीवीसी भेजी, जिसमें उसके दूसरे बहुत से मामलों में संलिप्त होने और जाँच किये जाने की माँग की गयी थी। वर्मा सरकार के लिए परेशानी बनने लगे थे।

24 अगस्त को अस्थाना ने भी वर्मा के खिलाफ एक शिकायत केबिनेट सचिव के पास भेजी, जिसमें उन्होंने वर्मा पर कई मामलों की जाँच में बाधा डालने और आईआरटीसी मामले में लालू यादव पर रेड करने से रोकने का आरोप लगाया। सचिव ने इस शिकायत को तुरन्त सीवीसी के पास भेज दिया और सीवीसी ने तुरन्त जाँच शुरू कर दी।

15 अक्टूबर को सीबीआई ने अपने ही विशेष निदेशक अस्थाना के खिलाफ मांस व्यापारी मोइन कुरैशी के मामले में उसके सहयोगी हैदराबाद के एक कारोबारी सतीश सना से दो करोड़ रुपये की रिश्वत माँगने और उत्पीड़ित करने की एफआईआर दर्ज की और इस रिश्वत के कथित विचौलिये और आरोपी मनोज प्रसाद को गिरफ्तार कर लिया, जो रॉ के पूर्व निदेशक का बेटा है। इस एफआईआर में सीबीआई के सूचना अधिकारी देवेन्द्र कुमार को भी आरोपी बनाया गया था।

23 अक्टूबर की आधी रात को प्रधानमंत्री ने अपने आवास पर अमित शाह और राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार अजीत डोभाल के साथ आपात बैठक की और आलोक वर्मा तथा राकेश अस्थाना दोनों को जबरन छुट्टी पर भेज दिया और संयुक्त निदेशक नागेश्वर राव को सीबीआई का अन्तरिम निदेशक नियुक्त कर दिया। अस्थाना के खिलाफ रिश्वतखोरी के मामले की जाँच कर रहे सीबीआई के अधिकारी ए के बस्सी का तबादला पोर्ट ब्लेयर कर दिया गया।

आलोक वर्मा ने इस आदेश को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी और न्यायालय ने 26 अक्टूबर को सीवीसी को दो हफ्ते के अन्दर जाँच पूरी करने का आदेश दिया और कहा कि सर्वोच्च न्यायालय सेवा निवृत्त न्यायाधीश श्री ए के पटनायक सीवीसी की जाँच की निगरानी करेंगे। जस्टिस पटनायक ने आलोक वर्मा के खिलाफ दिये गये सबूतों की जाँच की, जिसमें उन्हें कुछ 'ठोस' नहीं लगा और इसी आधार पर सर्वोच्च न्यायालय ने आलोक वर्मा की बहाली का आदेश पारित किया था। एचपीसी ने उन्हें पद से क्यों हटाया और अगर वे भ्रष्ट थे तो उन्हें दूसरे विभाग का महानिदेशक क्यों बनाया गया, इन दोनों सवालों के जवाब आज तक स्पष्ट नहीं हैं।

मोइन कुरैशी क्या बला है?

सीबीआई के दो सर्वोच्च अधिकारियों के बीच सतह पर टकराव की जो तात्कालिक वजह दिखायी देती है, वह एक माँस कारोबारी मोइन अहमद कुरैशी है। दोनों अधिकारियों ने एक दूसरे पर मोइन कुरैशी से रिश्वत लेने के आरोप लगाये हैं। मोइन कुरैशी प्रसिद्ध दून स्कूल और दिल्ली के सेंट स्टीफन कॉलेज का छात्र रह चुका है। उसने अपने कारोबारी जीवन की शुरुआत 1993 में उत्तर प्रदेश के रामपुर में हत्याघर (स्लॉटर हाउस) लगाकर की थी। जल्दी ही उसने राजनीतिज्ञों और नौकरशाहों के बीच गहरी पैठ बना ली। उसका माँस का कारोबार राकेट की रफ्तार से बढ़ा और 2010 तक वह भारत का सबसे बड़ा माँस निर्यातक बन गया।

भारत में नवउदारवादी नीतियों का दौर शुरू हो चुका था और काले धन की गंगा-जमुना बह निकली थी। इसी दौरान उसने दुबई, लन्दन समेत यूरोप के प्रमुख देशों, अमरीका और सिंगापुर में हवाला कारोबार का मजबूत नेटवर्क तैयार कर लिया था। राजनेताओं, नौकरशाहों, सटोरियों, अभिनेताओं, खिलाड़ियों, कारोबारियों को अपना काला धन ठिकाने लगाने के लिए मोइन कुरैशी जैसों की सख्त जरूरत थी। माना जाता है कि आज एशिया और यूरोप के दर्जनों देशों में उसकी पहुँच है। लगभग 45 विदेशी बैंकों से उसका सम्बन्ध है। कोयला घोटाले की जाँच के दौरान सामने आया था कि उसने तत्कालीन सीबीआई निदेशक रंजीत सिन्हा से 90 बार मुलाकात की। उनके बाद निदेशक बने एपी सिंह के लिए भी उसने आन्ध्र प्रदेश के एक उद्योगपति से 5 करोड़ झटके थे।

मोइन कुरैशी से किसके सम्बन्ध हो सकते हैं, के बारे में

कोई समझ बनाने के लिए राकेश अस्थाना और आलोक वर्मा के अतीत पर भी एक सरसरी निगाह डालनी जरूरी है।

राकेश अस्थाना 1984 के बैच के गुजरात कॉडर के आईपीएस अधिकारी हैं। चर्चा में रहना हमेशा उनका शौक रहा है। 1995 में सीबीआई में बतौर एसपी बन जाने से पहले के अपने छोटे से कार्यकाल में ही वे अहमदाबाद के डीसीपी और पाटन के एसपी का कार्यभार सम्भाल चुके थे। चारा घोटाले में बिहार के पूर्व मुख्यमंत्री लालू प्रसाद यादव के खिलाफ जाँच करके वे सुर्खरू हुए और भाजपा की निगाहों में चढ़ गये। उस समय लाल कृष्ण आडवाड़ी तथा नीतिश कुमार ने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी।

2002 में गुजरात का मुख्यमंत्री बनने के तुरन्त बाद मोदी अस्थाना को गुजरात वापस ले आये। उन्हें गुजरात के आपराधिक जाँच विभाग का डीआईजी नियुक्त किया गया और तुरन्त ही गोधरा रेल हादसे की जाँच की जिम्मेदारी दे दी गयी। उन्होंने यहाँ भी कमाल कर दिखाया और जाँच को पहले आईएसआई की, फिर सिमी की और बाद में 'नार्को आतंकवाद' की साजिश की ओर मोड़ दिया, जो पहले स्थानीय वेंडरों और कारसेवकों के बीच झगड़े के परिणाम के कोण से की जा रही थी। उनकी जाँच में 94 लोगों को दोषी ठहराया गया था, जिसमें से 63 को 2011 में बरी कर दिया गया। बरी होने वालों में 'मुख्य साजिशकर्ता' मौलाना उमर भी था।

गुजरात के प्रमुख व्यावसायिक शहर बड़ोदरा में अस्थाना ने आठ साल गुजारे, जिनमें तीन साल वह वहाँ के पुलिस कमिश्नर रहे। यहाँ उनकी नजदीकी संदेसरा बन्धुओं से हुई, जिनकी कम्पनी स्टर्लिंग बायोटेक पर बैंकों का 5,383 करोड़ रुपये का कर्ज है, जिसे बैंकों ने डूब खाते में डाल दिया है। अस्थाना ने अपनी बेटी की शादी बड़ोदरा में ही की, जिसमें आतिथ्य का पूरा खर्च शहर के कारोबारियों ने उठाया। इस मामले की सीबीआई जाँच चल रही है।

2011 में अस्थाना हीरा कारोबार के शहर सूरत के पुलिस प्रमुख बनाये गये। उन्होंने सूरत और बड़ोदरा दोनों शहरो में सीसी टीवी कैमरे लगाने की बड़ी परियोजनाएँ शुरू कीं, जिसका ठेका यातायात शिक्षा ट्रस्ट को दिया गया, जिसे दोनों शहरों के सबसे बड़े कारोबारी चलाते हैं। सूरत को 'सुरक्षित' शहर बनाने के लिए वे उद्योगपतियों के संघ फिक्की से पदक भी पा चुके हैं।

सीबीआई और गुजरात के अपने कार्यकाल के दौरान वे नरेन्द्र मोदी और अमित शाह के पसन्दीदा अधिकारी होने का रुतबा पा चुके थे। उन्हें नरेन्द्र मोदी का 'ब्लू आइड ब्वाय' कहा जाने लगा था। 2014 में नरेन्द्र मोदी के प्रधानमंत्री बनते ही उन्हें वापस सीबीआई में बुला लिया गया।

अस्थाना के ठीक विपरीत आलोक वर्मा की छवि एक शान्त और भ्रष्टाचार विरोधी होने की रही है। 1979 में आईपीएस बनने से लेकर आज तक किसी राजनीतिक पार्टी में अपनी गहरी पकड़ बनाने में वह असफल रहे हैं। उनके बारे में कहा जाता है कि वह अन्तरमुखी हैं, ज्यादा रिश्ते नहीं बनाते, लेकिन भाग्यशाली हैं। खास प्रयास के बिना ही पहले दिल्ली के आयुक्त बने और फिर सीबीआई के निदेशक।

मोईन कुरैशी के अन्दर छिपे रहस्यों और सत्ता के शीर्ष पर बैठे लोगों की अस्थाना से करीबी से भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण दूसरे कारण थे, जिनके चलते वर्मा की सीबीआई से विदाई तय थी। कुछेक समाचार माध्यमों का कहना है कि जाँच के लिए वर्मा के पास आये मामलों में कुछ ऐसे थे, जो सरकार के लिए संकट बन सकते थे। वर्मा ने जिस तरह से सरकार की पसन्द-नापसन्द को दरकिनार कर दिया था, उससे सरकार को यह डर लगने लगा था कि कहीं वह कोई परेशानी न खड़ी कर दें। दूसरे, चुनाव सिर पर थे।

केन्द्र सरकार राफेल विमान सौदे के मामले में सबसे ज्यादा डरी हुई थी। दरअसल 4 अक्टूबर को वरिष्ठ भाजपा नेता यशवन्त सिन्हा औरअरुण शौरी तथा वरिष्ठ अधिवक्ता प्रशान्त भूषण ने एक लम्बी-चौड़ी रिपोर्ट आलोक वर्मा को सौंपी थी। इसके बाद वर्मा राफेल विमान सौदे की फाईल मँगाने के लिए चिट्ठी लिख चुके थे। चिट्ठी वापस लेने के लिए वर्मा पर दबाव बनाया गया तो उन्होंने इनकार कर दिया। जिससे इस मामले में सीबीआई द्वारा एफआईआर दर्ज करने की सम्भावना बन गयी।

दूसरा मामला मेडिकल काउंसिल ऑफ इंडिया का है। इस मामले में पहले से ही जाँच चल रही थी। इसमें उड़ीसा हाई कोर्ट के सेवानिवृत्त न्यायाधीश आईएम कुदुसी समेत न्यायतंत्र के कई बड़े लोगों का नाम सामने आ चुका था। कुदुसी के खिलाफ चार्जशीट तैयार थी। उस पर केवल वर्मा के दस्तखत होने बाकी थे। इसी से मिलते-जुलते एक दूसरे मामले में मेडिकल सीटों पर दाखिले में भ्रष्टाचार के आरोप के चलते इलाहाबाद उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश को छुट्टी पर भेज दिया गया था। इस मामले में भी शुरुआती जाँच पूरी होने के बाद फाइल दस्तखत के लिए वर्मा के पास गयी हुई थी।

भाजपा नेता सुब्रह्मण्यम स्वामी ने वित्त एवं राजस्व सचिव हंसमुख अधिया के खिलाफ एफआईआर दर्ज कराने के लिए सीबीआई को एक शिकायती पत्र के साथ कुछ दस्तावेज भी सौंपे थे। इस मामले की भी जाँच चल रही थी। वर्मा को पद से हटाने पर नाराजगी जताते हुए उन्होंने कहा था कि अस्थाना एक भ्रष्ट अधिकारी है और इसके सबूत मौजूद हैं।

कोयला खदानों के आवंटन के मामले में सीबीआई प्रधानमंत्री

के सचिव भास्कर खुलबे की सन्दिग्ध भूमिका की जाँच कर रही थी, और यह फाइल भी वर्मा के ही पास थी।

एक और महत्त्वपूर्ण मामला चन्दा कोचर और विडियोकोन के वी एन धूत के खिलाफ बैंक फ्राड की जाँच का था। यह जाँच सीबीआई की बीएसएफसी सेल के एस पी सुधांशु धर मिश्रा कर रहे थे, जिन्हें वर्मा के खेमे का अधिकारी माना जाता है। इस जाँच में चन्दा कोचर, उनके पति दीपक कोचर, स्टैंडर्ड एंड चार्टर्ड बैंक के सीईओ जरीन दारूवाला, टाटा कैपिटल के प्रमुख राजीव सब्बरवाल, गोल्डमान शैश इंडिया के चेयरमैन संजय चटर्जी और बैंकिंग क्षेत्र के सूरमा कहे जाने वाले के वी कामथ को आरोपी बनाया गया था। 10 जनवरी को वर्मा की सीबीआइ से विदाई के बाद 22 जनवरी को सुधांशु मिश्रा ने इस मामल में एफआईआर दर्ज करा दी। वित्तमंत्री अरुण जेटली सीबीआई की इस कार्रवाई से बहुत नाराज थे और उन्होंने सीबीआई को हड़काते हुए आरोपियों के पक्ष में एक ब्लॉग लिखा। तीन दिन बाद ही 25 जनवरी को सुधांशु मिश्रा का तबादला राँची कर दिया गया।

एक साथ गुँथी हुई इन तमाम घटनाओं से स्पष्ट है कि संसदीय लोकतंत्र की तमाम संस्थाओं को इस तरह ढाला जा रहा है कि वे केवल कुछ चुनिन्दा लोगों के फायदे की गारन्टी करें। इनके रास्ते में आने वाली हर बाधा को दूर करें। सत्ता के शीर्ष पर बैठे लोगों की सीबीआई से भी यही अपेक्षा थी। सीबीआई ऐसा ही कर भी रही थी, लेकिन जब पानी सर से गुजर गया और सीबीआई को भाजपा की जाँच विंग की तरह चलाया जाने लगा तो यह स्थिति आलोक वर्मा के लिए असहनीय हो गयी।

सत्ताधारी पार्टियाँ सीबीआई का इस्तेमाल पहले भी करती थीं और सीबीआई में भ्रष्टाचार पहले भी होता था लेकिन अब इनमें गुणात्मक बदलाव आ गया है। सीबीआई का मुख्य काम सार्वजनिक और सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों में भ्रष्टाचार की जाँच करना था। निजीकरण, उदारीकरण और वैश्वीकरण का दौर सार्वजनिक सम्पत्ति की लूट का सैलाब लेकर आया था। यह लूट तमाम सरकारी संस्थाओं, विभागों, जाँच एजेंसियों और न्यायतंत्र के बीच सामंजस्य बिठाये बिना असम्भव थी। आज निजीकरण के दौर की लूट अपने चरम पर पहुँच चुकी है। अपने ही बनाये कायदे-कानून इस लूट के रास्ते की बाधा बनने लगे हैं। यह दरबारी रूप ले चुका है। लूट में हिस्सा तय करवाने वाले नियम बेकार साबित हो चुके हैं। अब सामंजस्य की नहीं बल्कि हर चीज को कुछ लोगों को डंडे से हाँके जाने की जरूरत पड़ रही है। अब सीबीआई केवल तोता बनी नहीं रह सकती है, उसे सत्ता के शीर्ष पर बैठे लोगों के आदेश का हर तरह से चुपचाप पालन करना है। आलोक वर्मा इस नये बदलाव के अनुरूप खुद को नहीं बदल पाये। उन्हें इसी की सजा मिली।

रॉयल एनफील्ड का कर्मचारी उत्पीड़न

16 फरवरी को चेन्नयी स्थित रॉयल एनफील्ड के 500 कर्मचारी 10 दिनों की हड़ताल पर चले गये थे। 'रॉयल एनफील्ड एम्प्लाईज यूनियन' एक पंजीकृत यूनियन है। इसके बावजूद कम्पनी ने हडताल पर जाने वाले 40 कर्मचारियों को बर्खास्त कर दिया और यूनियन के तीन पदाधिकारियों का ट्रांसफर कर दिया। बदले की कार्रवाई के चलते ऐसा किया गया है।

पिछले साल के सितम्बर महीने में यामहा, रॉयल एनफील्ड और म्योंग शिन के 3,700 कर्मचारी अपनी माँगों को मनवाने के लिए आन्दोलन में शामिल हुए थे। इनसे मानक से कम वेतन में काम कराया जा रहा था। आन्दोलन के बाद से इन कम्पनियों का प्रबन्धन मजदूरों से खार खाए बैठा था और सबक सिखाने की ताक में था। आन्दोलन को तोड़ने के लिए प्रबन्धन ने आजमाया हुआ तरीका भी इस्तेमाल किया। उसने स्थायी कर्मचारियों की जगह ठेके पर कर्मचारी रखे। इसके बावजूद आन्दोलनकारियों के मनोबल को तोड़ा न जा सका।

रॉयल एनफील्ड का प्लांट ओरागडम स्पेशल इकोनॉमिक जोन (एसईजेड) में आता है। गौरतलब है कि एसईजेड में बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ श्रम कानूनों का पालन नहीं करतीं। वे मजदूरों को उनके बुनियादी अधिकारों से भी वंचित रखती हैं। इस काम में सरकारें भी उनका साथ देती हैं। नवउदारवादी मॉडल के तहत इसे बहुत अच्छा माना जाता है, जिसका नारा है-- सबकुछ मुनाफे के लिए, इनसान कुछ भी नहीं है। मजदूरों के बेतहासा शोषण का ही नतीजा है कि उनमें असन्तोष फैल रहा है और भविष्य में यह असन्तोष दावानल का रूप ले सकता है।

पर्यावरण

कोप-24 में जलवायु समस्या पर समझौतावादी रवैया

-- विक्रम प्रताप

संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन कांफ्रेन्स का 24वाँ (कोप-24) सम्मेलन पर्यावरण संकट का हल निकाल पाने में सफल न हो सका। यह सम्मेलन 2 से 15 दिसम्बर 2018 को पोलैण्ड के केटोवाइस शहर में आयोजित किया गया था। दुनियाभर में पर्यावरण के मुद्दे पर चल रहे छोटे-बड़े हजारों आन्दोलनों का दबाव ही था जिसके चलते इस सम्मेलन में इस समस्या पर विचार-विमर्श किया गया कि 2015 के उस विवाद को कैसे निबटाया जाये जो पेरिस जलवायु समझौते में गरीब और अमीर देशों के बीच कार्बन उत्सर्जन की सीमा तय करने को लेकर पैदा हो गया था। हम जानते हैं कि जलवायु परिवर्तन पर अन्तरराष्ट्रीय पैनल (आईपीसीसी) की उस रिपार्ट को सऊदी अरब, अमरीका, कुवैत और रूस खारिज कर चुके हैं जिस रिपोर्ट में कार्बन उत्सर्जन के लिए सबसे अधिक जिम्मेदार ठहराये गये देशों में इनका भी नाम था। कोप-24 में बीच-बीच का रास्ता निकालने की कोशिश की गयी। सम्मेलन में यह बात भी खुलकर सामने आ गयी कि दुनियाभर की शासन-सत्ता में अंधराष्ट्रवादी और दक्षिणपंथी उभार होने के चलते जलवायु परिवर्तन पर होने वाली अन्तरराष्ट्रीय वार्ताओं और समझौतों में बाधा पड़ रही है। इसे लेकर कोप-24 में चिन्ता भी व्यक्त की गयी।

इस सम्मेलन में दुनियाभर से 23,000 प्रतिनिधि शामिल हुए। प्रतिनिधियों ने इस बात पर सहमति जाहिर की कि एक नयी अन्तरराष्ट्रीय जलवायु पद्धति बनायी जाये जिसके तहत यह अनिवार्य किया जाये कि सभी देश कार्बन उत्सर्जन और उसमें कटौती से सम्बन्धित अपनी रिपोर्ट हर दो साल में पेश करें। यह व्यवस्था 2024 से लागू होगी। लेकिन देशों के ऊपर एक बार फिर कटौती से सम्बन्धित कोई बाध्यकारी नियम और उपाय लागू नहीं किया गया। इसके चलते दुनियाभर के उन पर्यावरणवादियों को बहुत निराशा हुई जो कोप-24 से बहुत अधिक उम्मीद पाले बैठे थे। इसी सम्मेलन में उत्सर्जन से सम्बन्धित जो रिपार्ट पेश की गयी, उससे साफ पता चलता है कि कार्बन के वैश्विक उत्सर्जन में कमी नहीं हो रही है बल्कि इसमें बेतहासा वृद्धि हो रही है।

आश्चर्य की बात यह है कि जिस शहर केटोवाइस में कोप-24 की कांफ्रेन्स आयोजित की गयी थी, वह सिलेसिया का कोयला बाहुल्य क्षेत्र है। इस बात ने कांफ्रेन्स के माहौल को दूषित कर दिया कि कोयला क्षेत्र की कई दिग्गज कम्पनियों को बातचीत के लिए कोप-24 में आमन्त्रित किया गया था। कांफ्रेन्स से कुछ दिन पहले ही पोलैण्ड ने अपने यहाँ एक नये कोयला खदान को खोलने का फैसला किया था। यह बात गौर करने वाली है कि पोलैण्ड की लगभग 80 प्रतिशत बिजली कोयले से बनायी जाती है, जो प्रदूषण का भयानक स्रोत है। केटोवाइस शहर की हवा में कोयले के इतने बारिक कण और जहरीला धुआँ भरा हुआ था कि प्रतिनिधियों को भी खुली हवा में साँस लेने में दिक्कत हुई। आम शहरवासियों की बात ही क्या? कोढ़ में खाज यह कि जिस जगह कांफ्रेन्स चल रही थी, उसे कोयले के विविध उत्पादों से सजाया गया था, मानो यह जलवायु परिवर्तन पर सम्मेलन न हो, बल्कि कोयले के उत्पादों का कोई व्यापार मेला हो। ये सभी घटनाएँ दिखाती हैं कि दुनियाभर की सरकारें जलवायु परिवर्तन के विविध सम्मेलनों में महज औपचारिकता के लिए शामिल होती हैं, जलवायु संकट के समाधान के लिए नहीं। इनसे कोई हल निकलेगा, यह सोचना बेमानी है।

लेकिन सम्मेलन चाहे विफल हो जायें, जलवायु संकट की रफ्तार बढ़ाती ही जा रही है। यूनिवसिर्टी ऑफ ईस्ट एंजलिया और ग्लोबल कार्बन प्रोजेक्ट ने अपने शोध में पाया कि दुनियाभर में कुल कार्बन का उत्सर्जन 2018 में यह 3710 करोड़ टन के रिकार्ड ऊँचे स्तर तक पहुँच गया। भारत दुनिया में उत्सर्जन के मामले में तीसरे स्थान पर है। इस रिपोर्ट में 2017 के भारत के उत्सर्जन में 6.3 प्रतितशत की वृद्धि दर्शायी गयी है। 2017 में विश्व के कुल उर्त्सजन में 1.6 प्रतिशत और 2018 में 2.7 प्रतिशत की वृद्धि दर्शायी गयी। कार्बन उत्सर्जन में यह वृद्धि कोयला, गैस और तेल के बढ़ते इस्तेमाल के चलते हुई है। 2018 में दुनिया के 10 बड़े उत्सर्जक हैं-- चीन, अमरीका, भारत, रूस, जापान, जर्मनी, ईरान, सऊदी अरब, साउथ कोरिया और कनाडा। अगर यूरोपीय संघ को क्षेत्र विशेष की तरह माने तो वह तीसरे स्थान पर आयेगा। आज दुनिया के कुल कार्बन उत्सर्जन में चीन की हिस्सेदारी 27 प्रतिशत है। 2018 में उसके उत्सर्जन में 4.7 प्रतिशत की वृद्धि हुई। अमरीका जो पेरिस समझौते से भाग खड़ा हुआ था, 2018 के

वैश्विक उत्सर्जन में उसकी हिस्सेदारी 15 प्रतिशत थी, जिसमें कई सालों तक कमी के बाद पिछले साल 2.5 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। यह एक बेहद चिन्ताजनक बात है।

कार्बन उत्सर्जन की बढ़ती मात्रा ने पर्यावरण के बड़े संकटों को जन्म दिया। आज से कुछ साल पहले पर्यावरण वैज्ञानिक जिन विभीषिकाओं की सम्भावना जताया करते थे, वह अब कोई दूर की बात नहीं रह गयी है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने अपने एक अध्ययन में पाया कि वायु प्रदूषण के चलते हर साल दुनियाभर में 70 लाख लोगों की मौत हो जाती है और इस समस्या से जुड़ी कल्याणकारी योजनाओं में लगभग 35,768 अरब रुपये हर साल खर्च करने पड़ते हैं। इसके बावजूद लोगों को अच्छे स्वास्थ्य की सुविधा उपलब्ध नहीं करायी जा सकी है। इस अध्ययन में यह भी पता चला कि जलवायु परिवर्तन प्रकृति में इनसानी दखलंदाजी बढ़ने के चलते हो रहा है जो बीमारियों का कारण बन रहा है।

ऑक्सफोर्ड जलवायु परिवर्तन संस्थान के शोधकर्ताओं का मानना है कि औद्योगीकरण के पहले दुनिया का तापमान अपवाद स्वरूप ही बढ़ता था। वह भी हजार सालों में एक बार। उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया कि आज के जलवायु परिवर्तन का सीधा सम्बन्ध मानव निर्मित पर्यावरण प्रदूषण से है। यह बात उन्होंने उस समय कही, जब अमरीका दुनियाभर में यह प्रचारित कर रहा है कि जलवायु परिवर्तन एक स्वभाविक प्रक्रिया है। इसका औद्योगीकरण और मानवीय क्रियाकलाप से कोई सम्बन्ध नहीं है।

भारत और अमरीका समेत दुनिया के कई अन्य देशों में दक्षिणपंथी सरकारों ने सत्ता की कुर्सी पर काबिज हुई हैं। जैसा कि सभी जानते हैं, 2008 के बाद आयी वैश्विक आर्थिक मन्दी का समाधान न तो किसी देश की सरकार और न ही पूँजीपति वर्ग कर सका। यह मन्दी व्यवस्था का चिरन्तन संकट बन गयी है। अपनी पूँजी को संकट से उबारने के लिए दुनियाभर के पूँजीपतियों ने ऐसी दक्षिणपंथी सरकारों को अपना समर्थन देना शुरू किया है जो उनके मुनाफे की हवस पूरी करने के आगे न तो अपने देश की जनता के हितों की परवाह करती हैं और न ही पर्यावरण की। भारत में भाजपा सरकार ने उन परियोजनाओं को एकतरफा मंजूरी दे दी जो पर्यावरण के लिहाज से बेहद खतरनाक हैं। यही हाल अमरीका, ब्राजील आदि देशों का भी है। सवाल यह है कि क्या ऐसी सरकारें जो अपने देशों के पर्यावरण को प्रदूषित करने में कॉपोरेट घरानों की मदद कर रही हैं, वे इस समस्या के समाधान के लिए गम्भीरता से कदम आगे बढ़ायेंगी। क्योटो सम्मेलन से लेकर कोप-24 तक के सम्मेलन इसका उत्तर 'न' में देते हैं। जाहिर सी बात है कि दुनिया में पर्यावरण संकट तेजी से बढ़ता जा रहा है लेकिन दुनियाभर की सरकारें इसे लेकर गम्भीर नहीं हैं।

जिस तेज रफ्तार से जलवायु परिवर्तन से होने वाली तबाही की गिरफ्त में दुनिया फँसती जा रही है और इसके दुष्परिणाम दुनियाभर की जनता को झेलने पड़ रहे हैं, वह एक गम्भीर चिन्ता की बात है। लेकिन यह भी सच है कि पर्यावरण सम्मेलनों की असफलता ने निराशा को बढ़ाया ही है। दुनिया की बड़ी अर्थव्यवस्था वाले देश अपने राष्ट्रीय हितों, यानी वहाँ के पूँजीपतियों के संकीर्ण वर्गीय हितों से समझौता करने को तैयार नहीं हैं। इसी के चलते 2015 के पेरिस समझौते से निकले समाधान को इन देशों ने रद्दी की टोकरी में फेंक दिया। इस समझौते में यह तय किया गया था कि इस शताब्दी के अन्त तक दुनिया के तापमान में वृद्धि को 2 डिग्री से नीचे रखा जायेगा। अब से अगर सभी देश यह लक्ष्य मान लें तो उन्हें सामूहिक रूप से 2030 तक कार्बन उत्सर्जन में 50 प्रतिशत की कटौती करनी होगी और 2050 तक कार्बन उत्सर्जन को शून्य करना होगा।

ग्रीनलैंड पर्यावरण संकट की चपेट में

ग्रीनलैंड डेनमार्क राज्य का एक स्वायत्त क्षेत्र है। इसके इलाके साल में अधिकांश समय बर्फ से ढके रहते हैं और यहाँ का मौसम हमेशा सर्द बना रहता है। यहाँ की कुल जनसंख्या मात्र 55,877 है यानी 1000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में महज 28 लोग रहते हैं। यह धरती के स्वर्ग जैसा है। यहाँ के बाशिन्दे दुनिया की उन खूबसूरत जगहों में से एक में रहते हैं, जहाँ वे समुद्र पर जमी बर्फ के ऊपर रेनेडियर और मस्कोक्स (कस्तूरी बैल) का शिकार करके जिन्दगी बसर करते हैं। आज यह देश जलवायु संकट की गिरफ्त में फँसता जा रहा है। इसके एक कस्बे कानाक की आबादी मात्र 650 है। इस कस्बे का तापमान ज्यादातर समय शून्य से नीचे रहता है। 2018 में कई दिन ऐसे गुजरे जब तापमान बढ़कर 23 डिग्री तक पहुँच गया। इससे कस्बे के नीचे का ग्लेशियर पिघलने लगा, पूरे कस्बे के जलमग्न हो जाने का खतरा पैदा हो गया है। बर्फ पिघलने से इसके बाशिन्दों के लिए शिकार करके जीविका चलाना भी कठिन होता जा रहा है। आज न केवल उनकी आजीविका पर संकट के बादल मँडरा रहे हैं बल्कि उनकी पूरी सभ्यता और संस्कृति खतरे में है।

पूँजीवाद के खात्मे के बाद उसकी जगह कैसी व्यवस्था होगी?

--माइकल डी येट्स

आज दुनिया कई तरह के संकटों का सामना कर रही है। इनमें सबसे प्रमुख है पर्यावरण की आसन्न तबाही, जिसे तेजी से बढ़ता धरती का तापमान और समुद्र का जल स्तर, बड़े पैमाने पर प्रजातियों का विलोप और ह्रास, जहरीली हवा, समुद्र सहित हर जगह का दूषित और प्रदूषित पानी, मिट्टी के लचीलेपन का नाश और दिनोंदिन बंजर होती जमीन। हम तेजी के साथ उस मुकाम की ओर बढ़ रहे हैं, जहाँ मानव समाज को हमने जिस रूप में जाना-समझा है, वैसा बने रहना असम्भव हो जायेगा। साथ ही, हम हर तरह कि असमानता अभूतपूर्व बढ़ोतरी के प्रत्यक्षदर्शी हैं-- आमदनी, सम्पत्ति, स्वास्थ्य, जीवन प्रत्याशा, स्कूल से लेकर पीने का पानी तक हर चीज तक पहुँच, उत्तरी और दक्षिणी दोनों गोलार्धों में नवफासीवादी आन्दोलनों का फैलाव; मुट्ठीभर वैश्विक निगमों द्वारा सत्ता पर बेइन्तहा कब्जा; और लगता है जैसे युद्धों का कोई अन्त ही नहीं। हर जगह नाना प्रकार के अलगावों की स्पष्ट अनुभूति हम एक दूसरे से अलग-थलग और आपसी प्रतियोगिता में लिप्त हैं; हम अपनी मेहनत से जो सामान और सेवाएँ पैदा करते हैं उनसे वंचित हैं; प्रकृति के साथ हमारा सम्बन्ध पूरी तरह विच्छिन्न कर दिया गया है; और यहाँ तक कि हम खुद अपने भीतर भी विभाजित हैं, अन्दर ही अन्दर चिन्ता और बेचैनी से ग्रस्त, जबकि बाहर से चेहरे पर खुशी ओढ़े रहते हैं।

हालाँकि इन तमाम विपदाओं के कई सारे सम्भावित कारण हो सकते हैं, लेकिन इनकी जड़ है हमारी व्यवस्था, उत्पादन और वितरण की हमारी व्यवस्था का चरित्र। पूँजीवाद एक ऐसी उत्पादन प्रणाली है जिसका मर्मस्थल पूँजी का बेपनाह संचय है, जितना सम्भव हो, उतना मुनाफा बटोरना और उसका इस्तेमाल शुरुआती पूँजी को फैलाने की, बढ़ाने की मुहीम। यह संचय उजरती श्रम के शोषण तथा मानव शरीर और प्रकृति दोनों की बेदखली के जरिये ही सम्भव होता है। जिस तौर-तरीके से शोषण और बेदखली की जाती है तथा जिस संस्थागत ढाँचे के तहत यह सारा उपक्रम लगातार पुनरुत्पादित होता रहता है वह बहुत ही जटिल है और स्थानाभाव के कारण यहाँ उनकी पूरी तरह व्याख्या कर पाना सम्भव नहीं है। हालाँकि इतना कहना ही काफी होगा कि ये पूरी इमारत जमीन, प्राकृतिक संसाधन, भवन, मशीन और उपकरणों के मालिकाने के ऊपर इजारेदारी पर टिकी हुई है। ये ऐसी चीजें हैं जिन तक पहुँच होना दुनियाभर के कुछ गिने-चुने लोगों के लिए अपना अस्तित्व बनाये रखने की अनिवार्य शर्त है।

आज सबसे धनी एक प्रतिशत लोग बाकी के 99 प्रतिशत लोगों की कुल सम्पत्ति से भी ज्यादा के मालिक हैं। यह धनवानों को हर व्यक्ति और हर चीज के ऊपर जबरदस्त फायदा पहुँचाता है, काम पर, राजनीतिक दायरे में, यहाँ तक कि धरती माता की बेदखली के मामले में भी। वे हमारी जिन्दगी के हर पहलू पर अपना कब्जा जमाते हैं और वे सिर्फ पैसे की अन्तहीन भूख के चलते प्रकृति का विनाश करते हैं। जैसा कि मार्क्स ने कहा था, "संचय करो! संचय करो! यही मूसा और पैगम्बर हैं!"

पूँजी संचय के अभियान के दुष्परिणामों को ऊपर के पंक्तियों में रेखांकित किया गया है। निस्सन्देह ये सब दुष्परिणाम आनेवाले सालों में जैसे-जैसे चोटी की ओर दौलात जमा होती जायेगी, वैसे-वैसे और अधिक घनीभूत होंगे, जबकि जो निचली पायदान पर हैं उनको दुःख-तकलीफ के सिवा कुछ भी हासिल नहीं होगा, धरती और ज्यादा गरम होगी और मानव जीवन दिनोंदिन और ज्यादा डाँवाडोल होता जायेगा। इसका मतलब यह कि अगर सर्वव्यापी आमूल बदलाव नहीं होता। इसके दो निहितार्थ हैं-- पहला, हमें जड़ से फुनगी तक पूँजीवाद के हर पहलू का उन्मूलन करना होगा। कम से कम इन चीजों का तो अन्त करना ही पड़ेगा

- जमीन सहित उत्पादन के सभी साधनों के निजी स्वामित्व का खात्मा।
- मुनाफा के लिए उत्पादन का खात्मा।
- अन्तहीन आर्थिक विकास की सनक का खात्मा।
- उजरती श्रम के शोषण का खात्मा।
- किसानों की जमीन की, शहरी और ग्रामीण सार्वजानिक स्थानों की, श्रम और महिलाओं के शरीर की, काले लोगों के शरीर की बेदखली का तथा पितृसत्ता और नस्लवाद के सभी रूपों का खात्मा।
- प्राकृतिक जगत की निजी लूट का खात्मा।
- साम्राज्यवाद का खात्मा। पूँजीवाद का इरादा हमेशा ही धनी देशों द्वारा दुनिया के तमाम गरीब देशों को अपने मातहत बनाये रखना रहा है।
- परिवार से लेकर राज्य तक तथा शिक्षा और मीडिया से लेकर न्याय प्रणाली तक, उन सभी पूँजीवाद परास्त संस्थाओं और ताम-झाम का खात्मा, जो समाज का पुनरुत्पादन करते हैं।

नरम शब्दों में गिनाये गये ये कार्यभार कठिन हैं। इनके लिए

उजरती मजदूरों और किसानों की अभूतपूर्व विश्वव्यापी एकजुटता की जरूरत होगी। नयी मजदूर यूनियनों को खड़ा करना होगा और पुरानी यूनियनों में आमूलचूल रूपान्तर करना होगा; नयी जुझारू और सिद्धान्तनिष्ठ राजनीतिक विन्यासों का गठन करना जरूरी होगा; बुनियादी, आलोचनात्मक शिक्षा को सभी संघर्षों और संगठनों के केन्द्र में लाना जरूरी होगा; मजदूर वर्ग की अधिकतम सुरक्षा की गारन्टी करनेवाली माँगों को पूरा कराने के लिए सरकार से सीधे टकराने की मुहीम लाजिमी होगी; तथा सीधी कार्रवाई, सामूहिक स्वयं-सहायता के रूपों को विकसित करना होगा, जिनका लक्ष्य बुनियादी जरूरतें मुहैया कराना और अपने ढाँचे के भीतर पूँजीवाद का विकल्प तैयार करना होगा।

दूसरा, हमें यह तय करना होगा कि हमारा लक्ष्य किस तरह के समाज का निर्माण करना है? यदि मानवता को टिकाऊ धरती के सदृश्य किसी चीज पर अपने आपको कायम रखना है, तो पारिस्थितिकी-समाजवाद का कोई न कि कोई रूप अपरिहार्य होगा। हालाँकि मैं या कोई और व्यक्ति किसी ऐसी उत्पादन प्रणाली का कोई विस्तृत खाका तैयार नहीं कर सकता और न ही करना चाहिए, लेकिन यह सम्भव है कि अपने लक्ष्य को सामान्य रूप से वर्णन करें। यहाँ उनमें से कुछ लक्ष्यों को माँग की शक्ल में दिया जा रहा है--

1. एक टिकाऊ पर्यावरण। हम जो कुछ प्रकृति से हड़पते हैं उसको लौटाना जरूरी है। हम मानव अस्तित्व को खतरा पैदा करने वाले कई पर्यावरणीय आपदाओं की ओर बढ़ रहे हैं। अगर ऐसा नहीं किया जाता, तो मजदूर वर्ग के लिए कोई दुनिया नहीं होगी, किसे वह बदले। सभी आर्थिक फैसले टिकाऊ पर्यावरण को एक केन्द्रीय निर्धारक कारक मानकर ही लिया जाना चाहिए।
2. एक नियोजित अर्थव्यवस्था। बाजार की अराजकता को हटाकर उसकी जगह उत्पादन की सचेत योजना को स्थापित किया जाना चाहिए। बाजार पर निर्भरता के प्रत्यक्ष परिणाम हैं मियादी आर्थिक संकट और असंगत असमानता। ये न तो उचित हैं और न ही जरूरी। जब कॉरपोरेट अपनी योजना बनाते हैं, पूरा समाज मिलकर अपनी योजना क्यों नहीं बना सकता है?
3. जितना ज्यादा हो सके, उपभोग को सामाजिक दायित्व बनाना, खास कर परिवहन और बच्चों की देखरेख। जीवन की जरूरतें भी कहीं अधिक सामूहिक होनी चाहिए। इससे न सिर्फ संसाधनों की बचत होगी, बल्कि यह हमारे अन्दर अपनापन और खुशी की भावना भर के हमारा सामाजीकरण करेगा। हम सामाजिक प्राणी हैं, इसका मतलब यह नहीं कि हम गैर जरूरी निजी मालिकाने वाले उपभोक्ता मालों से घिरे अलग-थलग जिन्दगी जियें।
4. कार्यस्थल का जनवादी मजदूर-समुदायों द्वारा संचालन, जिसमें जहाँ तक सम्भव हो सके, व्यापक श्रम-विभाजन का खत्म हो और मशीनों का निर्माण और चलन सामाजिक उपयोगिता को निर्देशक सिद्धान्त मानते हुए किया जाये। उजरती श्रम का खात्मा।
5. स्कूलों से लेकर मीडिया तक, समाज के पुनरूत्पादन में सहायक सभी सामाजिक संस्थाओं का सार्वजनिक मालिकाना। माल और सेवाओं के उत्पादन के मामले में भी जहाँ तक सम्भव हो, ऐसा ही किया जाना चाहिए। कई मामलों में उत्पादन और वितरण से सम्बन्धित फैसले लेने की जिम्मेदारी मजदूरों और समुदायों द्वारा संचालित सहकारिताओं को सम्भालनी चाहिए। परिवहन खर्च और स्वस्थ पर्यावरण दोनों के लिहाज से भोजन कि स्थानीय स्तर पर आपूर्ति खास तौर से महत्त्वपूर्ण है। अगर खाद्य सामग्री का पैदावर वहीं हो जहाँ उसका उपभोग होता है, मिट्टी के पोषण मूल रूप से लौटना कहीं ज्यादा आसन होगा।
6. जिन्दगी के सभी क्षेत्रों में एक रेडिकल समतामूलक समाज। आदमी और औरत के बीच, सभी नृजातीय और नस्ली समूहों के बीच, लैंगिक पहचान और यौनिक पसन्द-नापसन्द से ऊपर उठकर सभी लोगों के बीच, रोजगार, क्षेत्र और सभी सामाजिक सेवाओं और सुविधाओं पर पहुँच के मामले में सभी देशों के बीच और सभी देशों के भीतर समानता।

जिस चीज के खिलाफ हमें लड़ाई लड़ना जरूरी है, वह है व्यक्तिवाद और अहंकार जो मुट्ठी भर लोगों द्वारा बहुत सारे लोगों पर वर्चस्व कायम करने की छूट देता है। ऐसा कोई समाज मुक्तिकारी नहीं हो सकता; यह उन नाना प्रकार के अलगावों को समाप्त नहीं कर सकता जिन्हें हम महसूस करते हैं। हम जबरदस्त क्षमता से लैस, चिन्तनशील और सोद्देश्य प्राणी हैं। एक अच्छे समाज को यह सुनिश्चित करना होगा कि इनका विकास सबकी भलाई के लिए हो। अगर हम अपने सभी संघर्षों के दौरान इन सरल विचारों को अपने दिमाग में रखें, तो लाजिमी है कि हम अपने सर्वोत्तम अन्तःप्रेरणा और आकांक्षा के अनुरूप एक नयी दुनिया के निर्माण की शुरुआत करेंगे। इस राह में बहुत सी गलतियाँ होंगी और उससे सबक सीखने को मिलेंगे। फिर भी, अगर मानव जाति ने इस धरती पर अपने जीवन के अधिकांश समय के दौरान सामूहिकता और साझेदारी की शैली में गुजर-बसर किया तो कोई कारण नहीं कि हम सचेतन तौर पर अपने पूर्ववर्ती जीवन शैली की समाप्ति के बाद से जो कुछ हमने सीखा है, उनको ग्रहण न करें और कोई ऐसी चीज कि रचना न कर पायें जो उसके आधुनिक और बेहतर संस्करण का निर्माण करे।

(माइकल डी येट्स मंथली रिव्यू प्रेस के सम्पादकीय निदेशक हैं। काफी समय तक वे कॉलेज प्रोफेसर और मजदूर शिक्षक रहे हैं। उनकी ताजा पुस्तक-- "कैन द वर्किंग क्लास चेंज द वर्ल्ड?" का हिन्दी अनुवाद हाल ही में गार्गी प्रकाशन द्वारा प्रकशित हुआ है।)

विष्णु नागर के दो व्यंग्य

(1) देशद्रोही

हम यह सार्वजनिक घोषणा करते हैं कि हम भी बहुतों की तरह आजकल श्देशद्रोहीश हैं।हमारे वश में श्मोदीछाप देशभक्तश होना नहीं है,इसलिए श्देशभक्तिश इनके और श्देशद्रोहश हमारे हवाले है। श्देशभक्तश ही ऐसे मोदी जी की जयजयकार कर सकते हैं,जो पुलवामा के आतंकवादी हमले की खबर सुनकर भी कोरबेट पार्क में फिल्म की शूटिंग जारी रखते हैं।ये ही ऐसे राज्यपाल जी के श्राष्ट्रवादश के भार को चुपचाप वहन कर सकते हैं,जो पूरे देश में कश्मीरियों के बहिष्कार का आह्वान करते हैं।40 से अधिक जवानों की शहादत को भुनाना इन श्देशप्रेमियोंश को ही आता है। मारे जाएँ जवान, श्देशभक्तिश की दुकान चलाना इन्हें ही शोभा देता है!उनके परिवारजन रोएँ और ये देशभक्ति का भांगड़ा नाचें कि वाह मोदी वीर,तूने फिर बढ़िया कमाल किया कि देशभक्ति का मैदान मारकर,विपक्ष को चारों खाने चित कर दिया!ऐसे देशभगतो को हम जैसे समस्त लोगों की ओर से दूर से ही प्रणाम।

हे श्देशभगतोश,हम तुम्हारा मुकाबला कर ही नहीं सकते, तुम जगह- जगह से कश्मीरी छात्रों को भगा सकते हो ,उन्हें आतंकित कर सकते हो, जान से मारने की धमकी दे सकते हो,हम इस जन्म में यह सब नहीं कर सकते। हम मुसलमानों को गाली देनेवाले, मस्जिद पर केसरिया झंडा फहराकर देशभक्ति का प्रदर्शन करनेवाले देशभक्त नहीं हो सकते। जो लेखक-पत्रकार आज इस श्देशभक्तिश की पोल खोल रहे हैं,जिन्हें माँ-बहन की गालियाँ देने से लेकर मार डालने तक की धमकियाँ ये देशभगत दे रहे हैं, हम भी तो उन्हीं की जाति के, उनके ही छोटेमोटे भाईबन्द हैं, इसलिए हम श्देशद्रोहीश हैं।हम वे श्देशद्रोहीश हैं,जिन्होंने 2014 में भी मोदी को वोट नहीं दिया था और 2019 में भी नहीं देंगे। तो श्देशभक्तोंश को तुम्हें ,तुम्हारी यह श्देशभक्तिश और हमें हमारा श्देशद्रोहश मुबारक।एक बार नहीं,सौ और हजार बार मुबारक।

श्देशभगतोश, जिस दिन से तुम श्देशभगतश हो गये, उस दिन,उस समय,उस घड़ी से हमने यह समझ लिया कि अब हमारे देशभक्त होने का समय जा चुका, कुछ समय के लिए इनका आ चुका है! हमने जान लिया कि हम अब श्देशद्रोहीश हो चुके हैं क्योंकि हममें तो किसी का भक्त होने की प्राथमिक योग्यता तक नहीं है। अरे, जब हम ईश्वर भक्त तक नहीं हो पाए तो बताओ, किसी मोदी,किसी शाह के भक्त कैसे हों?हम लेखकों के पूर्वज तो रवींद्रनाथ टैगोर जैसे लेखक थे,जो महात्मा गाँधी के राष्ट्रवाद तक पर ऊँगली उठाते थे।अब बताओ किस विधि हम तुम्हारे ओछे, छूँछे,नकली,ढोंगी और चुनावी राष्ट्रवाद को स्वीकार करें!

और हे श्राष्ट्रवादियोश,हम इसलिए भी श्देशद्रोहीश हैं कि हम संघ की विचारधारा को देशभक्ति की विचारधारा नहीं मान पाए।हम श्देशद्रोहीश हैं कि तुम्हारे अंधाधुंध प्रचार के बावजूद हम अरुंधति राय, प्रशांत भूषण, कन्हैया कुमार,शेहला रशीद, उमर खालिद आदि को देशद्रोही नहीं मान पाए! इनके प्रति हमारे मन में जो सम्मान है,उसे तुम श्देशभक्तिश के हजारों शस्त्र पूजाओं से पैदा नहीं कर पाए!हे श्देशभगतोश हम वे हैं,जो जवाहरलाल नेहरू को भी बहुत मानते हैं और उनके नाम पर दिल्ली में जो विश्वविद्यालय है,उसे श्देशद्रोहियोंश का अड्डा नहीं,देश के सर्वश्रेष्ठ विश्वविद्यालयों में मानते हैं।और भगतसिंह की हम अगरबत्ती लगाकर आरती नहीं उतारते,उन्हें फाँसी के फंदे पर झूल जानेवाले देशभक्त के रूप में इस्तेमाल नहीं करते।हम उनके बारे में,उनके लिखे को पढ़ते हैं और 24 साल के इस नौजवान की क्रांतिकारिता और उसकी अध्ययनशीलता और समझ के कायल हैं। हमारे प्रिय निबंधों में भगत सिंह का निबंध है- श्मैं नास्तिक क्यों बनाश ,जो तुमने नहीं पढ़ा होगा।पढ़ने की आदत और धीरज हो तो ऐ श्देशभक्तोंश इसे पढ़ लेना।इससे तुम्हें पता चल जाएगा कि भगत सिंह संघी नहीं,वामपंथी थे।वह तुम जैसे श्देशभगतोंश की नफरत की सौदागरी के समर्थक नहीं, सख्त विरोधी थे। पढ़ लोगे तो या तो दीवार से सिर फोड़ लोगे या मोदीभक्त-देशभक्त नहीं रहोगे।

हम श्देशद्रोहीश हैं क्योंकि हम गाय या भैंस का दूध चाय के साथ पीते हैं मगर न गाय हमारी माता है,न भैंस हमारी मौसी।हमें गाय एक प्यारा जानवर लगती है और भैंस भी एक सीधासादा जानवर लगती है।हम जैसे लोग भैंसपालक हुए होते तो शायद गाय की बजाए भैंस का पक्ष लेनेवाली पार्टी को वोट देते, हालांकि गोमाता ने भैंस मौसी की पार्टी नहीं बनने दी!वैसे भी शायद हममें से ज्यादातर ने गाय की बजाय भैंस का दूध अधिक पिया है बल्कि गाय के नाम पर भी पानी मिला भैंस का दूध ही पिया है।

हम श्देशद्रोहीश हैं क्योंकि हम उस भीड़ के साथ कभी खड़े नहीं हुए,जिसने अखलाक की जान ली और न हमने खूनी रथयात्रा में भाग लिया।हिंदुस्तान में इतने राम और इतने हनुमान मन्दिर

हैं कि एक और मन्दिर की जरूरत हमने महसूस नहीं की,इसलिए अयोध्या में राममन्दिर न बने,इससे हम जैसों की सेहत पर कोई फर्क नहीं पड़ता। इस देश में इतने मन्दिर हैं कि जितने आकाश में तारे हैं।आकाश में एक तारा कम है, देश में एक मन्दिर कम है,ऐसा हमें नहीं लगता। और हम इसलिए भी श्देशद्रोहीश हैं क्योंकि हम किसी भी बलात्कारी का-वह हिंदू हो या किसी और धर्म का- धर्म के नाम पर समर्थन करने खड़े नहीं हो सकते,उसका झंडा उठाकर गर्व से सिर नहीं उठा सकते। जिन्होंने कठुआ की आठ साल की बच्ची आसिफा के साथ सामूहिक बलात्कार किया और जो वकील इन बलात्कारियों के साथ खड़े थे,हम उनके साथी,उनके हमदर्द, उनके हमप्याला,हम निवाला नहीं हो सकते।

हम श्देशद्रोहीश हैं क्योंकि हम इस देश में रहकर ऐसी बातें करते हैं,जबकि देश भी आजकल तुम्हारा है, सरकार भी तुम्हारी है और लोकतंत्र भी तुमने अपने नाम करवा रखा है,जिसमें सवाल पूछना अपराध है। हम ऐसे श्देशप्रेमीश न थे,न हैं ,जो पुलवामा मामले में खून का बदला खून का नारा लगाते,चाहे हमें तुम कायर कहो। हमें कायर होना मंजूर है,हत्यारा और बलात्कारी होना नहीं।दूसरों की नहीं जानता,मैंने कई बार नापकर देखा,मेरा सीना छप्पन इंच का नहीं है ,इसलिए भी मैं श्देशद्रोहीश हूँ।हालांकि सीने के नाप और देशभक्ति का क्या संबंध है,यह मुझे नहीं पता और यह जानने की इच्छा भी नहीं कि छप्पन इंचवाले का सीना कितने इंच या कितने सेंटीमीटर का है।

(2) देशभक्त और देशद्रोही

पहले हम सब श्देशभक्तश और श्देशद्रोहीश बाँटे गये।फिर उनमें से हिंदू- हिंदू श्देशभक्तश और मुसलमान-मुसलमान श्देशद्रोहीश हो गये।फिर श्गोरक्षकश उर्फ मोदीभक्त श्देशभक्तश हो गये और हिंदुओं में भी जो सेकुलर हैं, वे श्देशद्रोहीश हो गये।फिर पूरा कश्मीर श्देशद्रोहीश हो गया और पूरा जम्मू श्देशभक्तश।फिर जम्मू और कश्मीर के सभी हिंदू श्देशभक्तश हुए और सभी मुसलमानों का तो कहना ही क्या, वे तो श्देशद्रोहीश होने का जन्मसिद्ध अधिकार लेकर ही इस धरती पर पैदा हुए हैं। फिर कारपोरेट का विरोध करना,अडाणी-अम्बानी का विरोध करना, श्देशद्रोहश हुआ और जंगल,समुद्र, नदी पर कारपोरेट का कब्जा करके आदिवासियों-दलितों आदि को उजाड़ना श्देशभक्तिश हुआ।सरकारी कम्पनी एचएएल से राफेल का सौदा छीनना श्देशभक्तिश हुआ, अनिल अम्बानी जैसे दिवालिया उद्योगपति को राफेल बनाने का ठेका दिला देना श्देशभक्तिश हुआ। फिर रक्षा मंत्रालय से राफेल की फाइलें गायब करवाना श्देशभक्तिश हुआ और एन.राम, प्रशांत भूषण,यशवंत सिन्हा, अरुण शौरी श्देशद्रोहीश हुए।ये श्देशद्रोही हुए श्तो अर्णव गोस्वामी,सुधीर चौधरी,अंजना ओम कश्यप श्देशभक्तश हुए।

इस तरह श्देशभक्तिश और श्देशद्रोहश की विभाजन रेखाएँ खिंचती चली गईं।1947 के बाद एक और विभाजन हुआ और होता चला जा रहा है।मोदी जी चूँकि श्न्यू इंडियाश बनाना चाहते हैं,इसलिए उन्होंने भारतीय संविधान में एक अघोषित संशोधन कर दिया है।अब उनसे सवाल पूछना श्देशद्रोहश है और वे और उनके भक्त जिनसे भी,जब भी,जहाँ भी,जो भी चाहें, सवाल पूछें श्देशभक्तिश है। यहाँ तक भाजपा सांसद और विधायक का जूतमपैजार देशभक्ति है और पाकिस्तान के लिए जासूसी करना तक श्देशभक्तिश है।

अगर 2019 के चुनाव के बाद मोदी जी का श्न्यू इंडियाश बनता रहा-जिसका खतरा कम है- तो सवाल ही नहीं और भी बहुत कुछ भी श्देशभक्तिश या श्देशद्रोहश हो जाएगा।अक्ल का इस्तेमाल करना तो अभी से श्देशद्रोहश है,कल से मोदी जी की तरह दाढ़ी-मूँछ न रखना,उनकी तरह कोचीन को कराची न कहना, तक्षशिला को हिंदुस्तान में न बताना, मोदी जी की डिग्री पर सवाल करना श्देशद्रोहश हो जाएगा।थोड़ा इंतजार कीजिए, आपके मुँह से मोदीविरोधी एक वाक्य तक निकला तो आपका मुँह और आपके कान ने ऐसी बात सुनी तो कान श्देशद्रोहीश हो जाएगा! आपका रंग,आपकी भाषा भी श्देशद्रोहीश अथवा श्देशभक्तश होने के लिए विवश हो जाएगी।अभी श्न्यू इंडियाश ठीक से बना कहाँ है ,बन गया, तब देखिएगा आज जो फैंटेसी लग रहा है,कल सिर्फ वही सच होगा। निश्चिंत रहिए आधार कार्ड भी दो तरह के होंगे-केसरिया और हरा।कौनसा आधार कार्ड श्देशभक्तिश और कौनसा श्देशद्रोहश का सबूत होगा,यह आप समझ गये होंगे।हम और आप बांग्लादेशी या पाकिस्तानी हो जानेवाले हैं।

मोदी जी का फंडा एकदम सीधा है - उनसे सवाल मत पूछो।वे पूछें सवाल तो उसका वह जवाब दो और वह भी ऐसा,जो वह सुनना चाहते हैं।श्देशद्रोहीश बनने के लिए अब अधिक मेहनत करने की जरूरत नहीं,बस मोदी एंड ब्रदर्स से सवाल पूछ लें। जैसे अभी श्इंडिया टुडे टीवीश के राहुल कंवल ने बालाकोट पर वायुसेना के हमले में मरनेवाले आतंकवादियों की विवादित संख्या के बारे में मंत्री पीयूष गोयल से सवाल पूछ दिया तो उस श्देशभक्तश अविलम्ब श्देशद्रोहीश बना दिया गया।

हम तो उस दिन का इंतजार कर रहे हैं,जब हम न देशद्रोही होंगे, न देशभक्त। विष्णु नागर हैं, विष्णु नागर रहेंगे।

कैसी अद्भुत एकता है। पंजाब का गेहूँ गुजरात के कालाबाजार में बिकता है और मध्यप्रदेश का चावल कलकत्ता के मुनाफाखोर के गोदाम में भरा है। देश एक है। कानपुर का ठग मदुरई में ठगी करता है, हिन्दी भाषी जेबकतरा तमिलभाषी की जेब काटता है और रामेश्वरम का भक्त बद्रीनाथ का सोना चुराने चल पडा है। सब सीमायें टूट गयीं।

-- हरिशंकर परसाई

कहानी

भेड़िया

-- फारुक सरवर

बहुत देर से मैंने एक दरख्त में पनाह ले रखी है और मेरी यह ख्वाहिश है कि नीचे उतरूँ। लेकिन कम्बख्त भेड़िया मुझे उतरने नहीं देता। वह नीचे खड़ा मुझे खौफनाक नजरों से लगातार देख रहा है और इस इन्तजार में है कि मैं कब उतरूँगा और वह मुझे चीर-फाड़कर खा जायेगा। जिस दरख्त पर अब मेरा ठिकाना है, वह एक अजीब-सा दरख्त है। बल्कि अगर मैं इसे जादू का दरख्त कहूँ, तो बेजा न होगा। मैं यहाँ जो भी ख्वाहिश करता हूँ, वह फौरन पूरी हो जाती है। अगर नर्म और गर्म बिस्तर के बारे में सोचूँ तो वह मेरे करीब बिछ जाता है। उकता जाऊँ तो मेरे सामने एक शानदार टी.वी. सेट आ जाता है, जिसके स्टीरियो स्पीकर्ज होते हैं और जो दुनिया का हर स्टेशन पकड़ सकता है। अगर किसी भी खाने के लिए मेरा जी चाहे, तो वह फौरन हाजिर होता है। यहाँ सब कुछ है। हर तरह का आराम है। लेकिन यहाँ जिस चीज की कमी है और जिस चीज के लिए मैं तड़प रहा हूँ, वह है आजादी। लेकिन यह आजादी मुझसे कुर्बानी का तकाजा करती है और कुर्बानी यह कि नीचे उतरना पड़ेगा और भेड़िये को हलाक करना होगा। लेकिन मुझमें इतनी जुर्रत नहीं। मैं भेड़िये से खौफजदा हूँ और वह मुझसे ज्यादा ताकतवर है।

कभी-कभी जब मैं उस वक्त को याद करता हूँ, जब भेड़िया मेरा पीछा कर रहा था, तो मुझे पसीना छूट जाता है, एक सनसनी-सी जिस्म में फैल जाती है, दिल डूबने लगता है। तब मैं खुदा का शुक्र अदा करता हूँ कि अगर यह दरख्त मेरे सामने न आता और मुझे पनाह न देता, तो भेड़िया कब का मुझे हलाक कर चुका होता। मायूसी के इस घुप अँधेरे में कभी-कभार इस बात पर भी खुश हो जाता हूँ कि दरख्त काफी ऊँचा है, मैं यहाँ हर तरह से महफूज हूँ और भेड़िया मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

दिन के वक्त तो मेरी हालत ठीक रहती है। कोई न कोई मस्रूफियत निकल आती है। लेकिन ज्यों ही रात होती है, एक अजीब-सी तकलीफ का सामना करना पड़ता है। सो जाता हूँ, तो खौफनाक ख्वाब मुझे डराते हैं। एक कयामत-सी मुझ पर गुजरती है। तमाम जिस्म थका होता है और एक-एक अंग यूँ दुःख रहा होता है, जैसे किसी ने चाबुक से मुझे सख्त मारा हो।

अक्सर मैं यह सोचता हूँ कि मैं कब तक इस तकलीफ में मुब्तिला रहूँगा। कब तक इन्तजार करूँगा कि भेड़िया भूख से मर जाये। लेकिन वह बजाय मरने के, पहले से ज्यादा ताकतवर हो जाता है।

एक सुबह, जब मेरी आँख खुलती है, तो अचानक दरख्त के घने पत्तों से मुझे किसी और की मौजूदगी का एहसास होता है। खौफ से एक तेज-सी चीख मेरे मुँह से निकलती है और मुझे यकीन हो जाता है कि भेड़िया आखिर अपनी कोशिश में कामयाब हो ही गया। फिर मेरी हैरत की इन्तिहा नहीं रहती। जब मुझे पता चलता है कि वह मेरे ही जैसा एक शख्स है-- परेशान और घबराया हुआ। उस अजनबी ने दरख्त पर एक और भेड़िये के खौफ से पनाह ले रखी है। उसका भेड़िया भी नीचे खड़ा गुर्रा रहा है। दरख्त पर पंजे गाड़ रहा है। लेकिन तमाम कोशिशों के बावजूद ऊँचे दरख्त पर चढ़ नहीं पाता।

हम दोनों लोग हैं, जो अपने-अपने भेड़िये से खौफजदा हैं। बावजूद यह कि दरख्त में हमारे लिए हर तरह का आराम मौजूद है, लेकिन हम इन आरामदेह चीजों से खुश नहीं। बेबसी और उकताहट का एहसास दिन-ब-दिन हमें खाये जा रहा है। अब तो हमें रात में नींद भी नहीं आती है। ज्यों ही आँख लगती है, भेड़िये का खौफनाक चेहरा हमें दुबारा जगा देता है। कम्बख्त अब हमारे ख्वाबों में भी घुस गया है। वह हमें यहाँ भी सुकून से रहने नहीं देता।

हम दोनों के भेड़िये अक्सर अपनी जगह खामाश बैठे रहते हैं, लेकिन कभी-कभी उन दोनों पर ऐसा जुनून सवार होता है कि वे दरख्त पर हमला कर देते हैं, उसके मोटे तने पर दाँत और पंजे गाड़ देते हैं और उस वक्त खौफनाक गुर्राहट होती है। दोनों ही भेड़ियों का यह अचानक का बावलापन हमें और डरा देता है। लेकिन एक बात यह है कि हम दोनों के भेड़ियों की तअल्लुक अपने-अपने आदमी से है। मेरे साथी का भेड़िया मुझसे कोई तअल्लुक नहीं रखता और मेरा भेड़िया उससे। खास बात यह है कि दोनों भेड़िये भी एक-दूसरे से बेतअल्लुक रहते हैं। और हम इस बात से हैरान होते हैं।

एक दिन काफी सोच-विचार के बाद हम दोनों यह फैसला करते हैं कि हम दोनों नीच उतरेंगे और अपने-अपने भेड़िये से

मुकाबला करेंगे। जो भी होगा, देखा जायेगा। वरना यह दोजख जैसी तकलीफ वाली जिन्दगी कब तक हम गुजारते रहेंगे? तब हम दोनों आँखें बन्द करके नीचे कूदने का इरादा करते हैं। मेरा साथी तो कूद जाता है, अगर मैं अपनी बुजदिली की वजह से ऐसा नहीं कर पाता और अपनी जगह बैठा रह जाता हूँ।

उसका भेड़िया ज्यों ही उसे नीचे देखता है, तो फौरन उसकी तरफ लपकता है और उस पर हमला करता है। मेरा भेड़िया भी खबरदार हो जाता है और उसके कान खड़े हो जाते हैं। लेकिन जब मैं नीचे नहीं उतरता, तो वह गुस्से से आगबबूला हो जाता है और पागलों की तरह दरख्त के मोटे तने के साथ लड़ना शुरू कर देता है। इससे पहले कि मेरे साथी का भेड़िया उसे जमीन पर गिराये, वह उस छोटी-सी डाली से भेड़िये को मारता है, जो उसने दरख्त से तोड़ी हुई है। उसका भेड़िया फौरन जमीन पर गिरता है और चन्द ही लम्हों में मर जाता है।

मेरा साथी अब आजाद है। उसने अपनी बहादुरी से आजादी हासिल कर ली है। लेकिन मैं अब तक उसी पुरानी तकलीफ में मुब्तिला हूँ और खुद को कोस रहा हूँ। मेरा भेड़िया अब पहले से ज्यादा खौफनाक हो जाता है। वह वहशी बन चुका है और हर वक्त दरख्त से टकराता रहता है। शायद उसको यह खयाल है कि इस तरह मैं दरख्त से नीचे गिर पड़ूँगा या दरख्त टूट जायेगा। मगर मैंने हर वक्त दरख्त की शाखों को मजबूती से पकड़ा होता है। और मारे खौफ के मेरा जिस्म पसीने में डूबा होता है। दिन हो या रात, मैं लगातार भेड़िये को बद्दुआएँ भी देता हूँ, लेकिन वह कम्बख्त है कि बाज नहीं आता।

मेरा साथी लगातार मुझे आवाजें देता है। वह कसमें खाता है--

"अगर तुम नीचे उतरो, तो भेड़िया तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ेगा। वह बहुत कमजोर है। तुम उसे आसानी से मार सकते हो।"

लेकिन मुझे उसकी बात पर यकीन नहीं और ऊपर खड़ा खौफ से काँप रहा होता हूँ। अब चन्द ऐसे वाकये शुरू हो जाते हैं कि मुझे यह यकीन हो जाता है कि मैं आखिरकार मर जाऊँ। अचानक दरख्त में हरकत पैदा होती है। मैं फौरन नीचे देखता हूँ कि भेड़िये ने इसे हिलाया तो नहीं? लेकिन भेड़िया अपनी जगह लेटा होता है। यह क्या? मैं चीख उठता हूँ। दरख्त पल-पल छोटा हो रहा है। मैं मारे घबराहट के दरख्त की मोटी शाखों पर जोर-जोर से उछलता हूँ कि, हो सकता है इस तरह से दरख्त रुक जाये। लेकिन दरख्त नहीं रुकता और छोटा होता जाता है। अब एक दूसरी चीज मुझे और ज्यादा खौफजदा करती है। भेड़िया बड़ा हो रहा है और थोड़ी देर में एक बैल जितना बड़ा हो जाता है। मैं चीखता हूँ, चिल्लाता हूँ, दरख्त के अन्दर इधर-उधर भागता हूँ, लेकिन बेकार। अब मैं खुद को जहनी तौर पर मौत के लिए तैयार कर लेता हूँ और इर्द-गिर्द की तमाम चीजों को अलविदाई नजरों से देखता हूँ। भेड़िया और मैं पल-पल एक-दूसरे के करीब आ रहे हैं।

मेरा जेहन अब बिलकुल बिगड़ चुका है। मेरी आँख बन्द है और मैं फाँसी पर चढ़नेवाले उस मुजरिम की तरह मौत को खुश-आमदीद कह रहा हूँ, जिसके गर्दन में रस्सी का फन्दा डाला जा चुका है और जो अब इस इन्तजार में है कि जल्लाद अब रस्सी खींचेगा। मैं इस वक्त अगर कोई आवाज सुन रहा हूँ, तो वो सिर्फ मेरे साथी की है, जो नीचे से दे रहा है कि, एक खौफ है। रूई का एक पहाड़ है, जिसे तुम एक ठोकर में अपने रास्ते से हटा सकते हो।

आखिरकार मैं हिम्मत करता हूँ और दरख्त से नीचे कूदता हूँ। मेरा भेड़िया ज्यों ही मुझे अपने सामने पाता है, मुझ पर हमला कर देता है। लेकिन इससे पहले कि वह मुझे हलाक कर दे, मैं उसे एक उस पतली और नाजुक-सी शाख से मारता हूँ, जो मैंने दरख्त से तोड़ी होती है। हाथी जैसा बड़ा भेड़िया धड़ाम से नीचे गिरता है और देखते ही देखते मर जाता है।

अब मैं आजाद हूँ। कितनी हसीन है आजादी। कितना खूबसूरत है इसका एहसास। मैं खुशी से उछलता हूँ, दीवानों की तरह उछलता हूँ। कुछ देर के बाद जब मेरा जोश कुछ कम हो जाता है तो अपने साथी की तरफ देखता हूँ, ताकि उसका शुक्रिया अदा करूँ। लेकिन मेरा साथी अपनी जगह मौजूद नहीं होता। मैं तब इर्द-गिर्द देखता हूँ तो हैरान रह जाता हूँ। मेरे चारों तरफ बेशुमार दरख्त हैं, हर दरख्त में किसी न किसी शख्स ने पनाह ले रखी है और उसका भेड़िया खड़ा गुर्रा रहा है।

अब मैं जोर-जोर से हँसता हूँ, कहकहे लगाता हूँ और उन सीधे-साधे मासूम लोगों की तरफ बढ़ता हूँ, जो नाहक अपने भेड़िये से खौफजदा हैं।

भेड़िया गुर्राता है
तुम मशाल जलाओ
उसमें और तुममें
यही बुनियादी फर्क है
भेड़िया मशाल नहीं जला सकता।

--सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

दिल्ली के सरकारी स्कूल : नवउदारवाद की प्रयोगशाला

पिछले 4 सालों में दिल्ली के सरकारी स्कूलों की दसवीं और बारहवीं की नियमित कक्षाओं में क्रमशः 43,540 और 53,431 छात्रों की कमी आयी है। यानी, दसवीं में हर चौथे और बारहवीं में हर तीसरे छात्र को स्कूलों से निकाल दिया गया। एक तरफ बड़ी संख्या में छात्र कक्षा 9, 10 और 11 में नियमित स्कूलों से बाहर हो रहे हैं और दूसरी तरफ दिल्ली सरकार ओपन स्कूलिंग (एनआईओएस) के साथ हाथ मिलाकर स्कूल छोड़ने वाले बच्चों का कल्याण करने की वाहवाही लूट रही है। प्रजा फाउंडेशन की रिपोर्ट (दिसम्बर 2017) के अनुसार, 2016 में दिल्ली में 85,000 बच्चे स्कूलों से बाहर हुए। दिल्ली सरकार अपने स्कूलों में सुधार का दावा कर रही है। तो फिर छात्रों की संख्या घटती क्यों जा रही है?

स्कूलों से बाहर होते बच्चे

दिल्ली सरकार के स्कूलों में छात्रों के लिए कक्षा 12 तक की शिक्षा पूरी करनी मुश्किल होती जा रही है। एक आरटीआई में खुलासा हुआ है कि 2018-19 में 9 से 12वीं कक्षा तक के फेल होने वाले कुल छात्रों में से 66 प्रतिशत (1 लाख से ज्यादा) को सरकारी स्कूलों में फिर से दाखिला नहीं दिया गया। दिल्ली सरकार ने स्कूलों को निर्देश दिया कि कक्षा 9, 10 और 11 में फेल होने वाले छात्रों को नियमित स्कूल छोड़कर पत्राचार या ओपन कोर्स में दाखिले के लिए 'प्रोत्साहित' किया जाये। दिल्ली सरकार ने 'फेल न करने की नीति' को खत्म करने का फैसला लेकर छात्रों को पाँचवीं से ही स्कूलों से बाहर करने का इन्तजाम भी कर लिया है।

हम इस कड़वी सच्चाई से वाकिफ हैं कि सरकारी स्कूलों में दाखिला मुश्किल होता जा रहा है। 'शिक्षा का अधिकार' अधिनियम के तहत 6 से 14 साल की उम्र के बच्चों का दाखिला करना अनिवार्य है। लेकिन सरकार के ऐसे आदेश इसमें बाधा बन जाते हैं, जिसके तहत वह आधार कार्ड, पते का सबूत, बैंक अकाउंट आदि की माँग करती है। यहाँ तक कि प्रवेश के लिए 'अन्तिम तिथि' की गैर-कानूनी शर्त थोप दी जाती है। 2017 में दिल्ली सरकार ने दाखिले की प्रक्रिया को ऑनलाइन करके अभिभावकों की मुश्किलों को कई गुना बढ़ाया था। सरकारी स्कूलों में जो बच्चे आ रहे हैं, उनके अभिभावकों का इंटरनेट-कैफे में जाकर फॉर्म भरने में कीमती समय और पैसा लगा, गलतियाँ ठीक करवाने में जो मुश्किलें आयीं, वे अलग हैं। यह आसानी से समझा जा सकता है कि न जाने कितने बच्चे तकनीकी समस्याओं के चलते बिना दाखिले के लौट गये होंगे।

बढ़-चढ़ कर सफलता का ढिंढोरा पीटा जा रहा है। बच्चों को दोयम दर्जे के टेस्ट देने को मजबूर किया जाता है ताकि पास होने वाले बच्चों की संख्या बढ़ाकर दिखाया जा सके। शिक्षकों को अच्छे परिणाम लाने की धमकियाँ दी जाती हैं, जिसके चलते वे लगातार मानसिक दबाव में रहते हैं। बार-बार के टेस्ट से न केवल समय बर्बाद किया जा रहा है, बल्कि परिणाम-केन्द्रित शिक्षा का ऐसा माहौल तैयार किया जा रहा है, जिसमें शिक्षा के बौद्धिक मूल्यों की जगह रटने वाले बहुविकल्पीय प्रश्नों ने लेनी शुरू कर दी है। प्राथमिक स्तर से ही बच्चों को कोचिंग, प्रतियोगिता और बाजारवाद के हवाले किया जा रहा है। परिणाम-आधारित मूल्यांकन से कई तरह की विसंगतियाँ जन्म लेती हैं; जैसे-- विषयवस्तु की गहराई में न जाना, टेस्ट नियंत्रित संकीर्ण शिक्षण पद्धति, प्रश्न-पत्रों से लेकर परिणामों तक को तैयार करने में एक छलपूर्ण और अमर्यादित चालाकी, प्रतियोगितावाद और उससे उपजती श्रेष्ठता-हीनता का भेदभाव, अपमान-पुरस्कार के बाह्य प्रेरकों पर निर्भरता आदि।

स्कूलों में वर्गीकृत होते बच्चे

दिल्ली सरकार के स्कूलों में लागू 'चुनौती 2016' और 'मिशन बुनियाद 2018' नाम की योजनाओं के तहत पहले छठवीं से नौवीं तक और बीते वर्ष तीसरी से ही, सभी कक्षाओं के छात्रों को हिन्दी, अंग्रेजी और गणित के 'मूलभूत कौशलों' का परीक्षण करने वाले टेस्टों के आधार पर अलग-अलग वर्गों में बाँटा और चिन्हित किया जा रहा है। यह एक ऐसी व्यवस्था है जो नस्लीय रंगभेद और जातिगत भेदभाव की याद दिलाती है। इस नीति के घातक असर शिक्षकों और छात्रों के आपसी व्यवहार और गैर-मर्यादित भाषा में देखे जा सकते हैं। कुछ छोटे बच्चों ने इसे अपनी श्रेष्ठता के प्रतीक के रूप में लिया है, तो दूसरों में इससे निराशा और हीनता का बोध पैदा हुआ है। 'मिशन बुनियाद' के जरिये भाषा को संदर्भहीन करने का साफ मतलब है-- शिक्षा से ज्ञान और चिन्तन को खत्म करना। यह एक ऐसा धोखा है, जिससे चिन्तनशील दिमाग को खाली बर्तन में तब्दील किया जा रहा है।

'मिशन बुनियाद' के दौरान प्रत्येक स्कूल की हरेक कक्षा की प्रत्येक गतिविधि पर नजर रखने के लिए नये-नये यांत्रिक उपाय

इजाद किये जा रहे हैं। इसके लिए स्कूलों में मेंटर टीचर्स और टीचर्स डेवलपमेंट कोऑर्डिनेटर की फौज खड़ी की जा रही है, जिनसे सूक्ष्म निगरानी रखने, सरकारी योजनाओं को लागू करवाने, शिक्षकों के व्यवहार को संचालित करने और उनमें ऊँचे पदाधिकारियों का डर बिठाने का काम लिया जा रहा है।

दरअसल, इस तरह के 'मिशन' पूरी दुनिया में वैश्विक पूँजीवादी संस्थाओं के एजेंडे को लागू करने के लिए चलाये जा रहे हैं, ताकि 'साक्षर, लेकिन चेतनाहीन मजदूर' तैयार किये जा सकें। दिल्ली सरकार ने भी इस 'मिशन' में अपना पूरा दम झोंककर इन वैश्विक पूँजीवादी संस्थाओं के प्रति अपनी वफादारी साबित की है।

बच्चों के साथ-साथ स्कूलों का वर्गीकरण भी बढ़ा है। सरकार ने पहले अपने 54 स्कूलों को 'मॉडल' घोषित करके सरकारी स्कूलों की असमान परतों में एक विशिष्ट परत का इजाफा किया और बड़ी सफाई से इनके संचालन में पीपीपी (पब्लिक प्राइवेट पार्टनरशिप) के बहाने एनजीओ की घुसपैठ करा दी और इसके बाद 'उत्कृष्टतम स्कूल' के नाम से 5 नये स्कूलों की सबसे ऊँची परत बिछा दी।

स्कूलों में तैयार होते सस्ते मजदूर

बाजारवाद के तार 'कौशल विकास' की उस योजना से भी जुड़े हैं, जिसके नाम पर सरकारी स्कूलों में अब नौवीं से ही छात्रों को वोकेशनल कोर्सों की तरफ धकेला जा रहा है। इसके बाद ग्यारहवीं में बड़ी संख्या में छात्रों की पसन्द या इच्छा के विपरीत वोकेशनल स्ट्रीम दी जा रही है। यह सरकारी स्कूलों के अकादमिक चरित्र पर एक सीधा हमला है। इस तरह के कोर्सों का स्कूलों के अन्दर एक लिंग-आधारित बँटवारा भी है और इन्हें केवल सरकारी स्कूलों पर ही थोपा जा रहा है, जहाँ अधिकांश छात्र मजदूर, दलित, पिछड़ी, अल्पसंख्यक और विकलांग पृष्ठभूमि से आते हैं। यह वंचित तबकों, जातियों और वर्गों के बच्चों के शैक्षिक- सामाजिक बहिष्कार का एक नया उपाय है। दिल्ली सरकार ने इस नीति को अपने स्कूलों में तेजी के साथ पूरी ताकत से लागू किया है। आज हमारे स्कूलों में निजी संस्थाएँ आकर निचली कक्षा से ही बच्चों का 'अभिरुचि टेस्ट' लेती हैं और बिना शिक्षकों की सक्रिय भागीदारी के बच्चों को टेस्टों के आधार पर बाँटकर वोकेशनल कोर्स के लिए प्रोत्साहित करती हैं।

दिल्ली सरकार ने न तो एक भी नया कॉलेज खोला है और न ही शिक्षक तैयार करने वाला किसी भी स्तर का संस्थान खड़ा किया है, मगर 'विश्व-स्तरीय' कौशल विकास केन्द्र जरूर खोले हैं जिसका प्रचार गर्व से किया है। शिक्षकों के शिक्षण को भी विश्वविद्यालयों के बजाय एनजीओ के हाथों में सौंपा जा रहा है। इससे ज्यादा हास्यास्पद और क्या होगा कि जब पूरी अर्थव्यवस्था ही संकट से गुजर रही है, सरकारी क्षेत्रों को सिकोड़ा जा रहा है। साथ ही छोटे स्व-नियोजित व्यवसायों पर एक-एक करके चोटें की जा रही हैं। तब बच्चों को यह कहकर कि 'मौलिक कौशल' सिखाये जा रहे हैं कि लोग इसीलिए बेरोजगार हैं, क्योंकि उनके पास कौशल नहीं है। अगर यही करना है तो स्कूलों की जरूरत ही क्या है?

गैर-अकादमिक होती पाठ्यचर्या

दिल्ली सरकार शिक्षा के शिथिलीकरण की कड़ी में कुछ दूसरे कार्यक्रम भी चला रही है; जैसे-- खुशी की पाठ्यचर्या; स्वच्छता की पाठ्यचर्या और निजी धन्धे की पाठ्यचर्या। गहन शिक्षा सिद्धान्त और अकादमिक प्रक्रिया को अपनाये बिना इन पाठ्यचर्याओं द्वारा हर बच्चे के स्कूली दिन के 40-50 मिनट को ऐसे राजनीतिक कार्यक्रमों की बलि चढ़ा दिया जाता है, जो मूल रूप से बच्चों की चेतना को कुन्द करने का काम करते हैं। सरकार के प्रचारतंत्र ने सतही और गलत विचारों को अमली जामा पहनाकर तालियाँ बटोरने में विशेषज्ञता हासिल की है। 'विद्या ज्योति' जैसी आध्यात्मवादी संस्था को प्रारम्भिक शिक्षक तैयार करने वाले जिला-स्तरीय संस्थानों में अहम भूमिका दी जा रही है। यह तय है कि ऐसी संस्थाएँ और कोर्स स्कूलों में खतरनाक रूप से रूढ़िवादी और विज्ञान-विरोधी विचारों को बढ़ावा देने का माध्यम बनेंगे।

प्रोपगंडा के केन्द्र बनते स्कूल

दिल्ली सरकार ने 'साझा मंच' नामक एनजीओ के साथ मिलकर स्कूल प्रबन्धक समिति (एसएमसी) का चुनाव करवाने और मासिक बैठकें करवाने की प्रक्रिया शुरू की है। लेकिन इसके साथ ही शुरू हुआ है एसएमसी पर केन्द्रीकृत एजेंडा थोपना और एसएमसी को गैर-अकादमिक उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल करना। इन बैठकों में शिक्षकों और अभिभावकों के बीच खुलकर बातचीत के अवसर नहीं रह गये हैं, बल्कि इन्हें सरकारी कार्यक्रमों जैसे-- मिशन बुनियाद, आधार, जीएसटी, छोटी बच्चियों के लिए प्रोविडेंट फण्ड आदि बेचने का अड्डा बना दिया गया है। हमारे समाज में आज भी अभिभावक अपने बच्चों के कल्याण के लिए शिक्षक की सलाह पर विश्वास करते हैं। इस अवसर का फायदा उठाकर सरकारें स्कूलों और शिक्षकों का इस्तेमाल सेल्समैन की तरह करने लगी हैं। 28 जनवरी 2019 को दिल्ली सरकार के स्कूलों में आयोजित मेगा पीटीएम के अवसर को खुले तौर पर दलगत प्रचार के लिए इस्तेमाल किया गया। स्कूलों में 'दिल्ली सरकार द्वारा 11,000 कमरों का निर्माण' का ऐलान करने वाले जो बोर्डे लगायी गयी थीं, वे कोई जनहित सम्बन्धी घोषणाएँ नहीं थीं, बल्कि

आत्म-प्रचार था। शिक्षकों में इसके चलते असन्तोष है।

डाटा उत्पादन के केन्द्र बनते स्कूल

सरकारी स्कूलों की बदलती भूमिका का एक और पहलू सामने आया है कि इन्हें तरह-तरह के डाटा इकट्ठा करने वाले केन्द्रों में तब्दील किया जा रहा है। उदाहरण के तौर पर, दिल्ली सरकार अपने स्कूलों को निर्देश देती है कि वे बच्चों के परिवारों के सभी सदस्यों की तरह-तरह की निजी जानकारियाँ (जैसे, वोटर कार्ड, आधार कार्ड, फोन नम्बर, शैक्षिक योग्यता, मकान का मालिकाना स्वरूप आदि) इकट्ठी करें। अदालत में इस बारे में सवाल पूछे जाने पर इसके उद्देश्य के रूप में सरकार द्वारा विभिन्न योजनाएँ बनाने का गोलमोल जवाब दिया गया। अदालती चुनौती के चलते ही सरकार ने माँगी गयी जानकारियों की संख्या को घटा दिया। शिक्षकों पर प्रशासनिक दबाव बनाकर तथा बिना भरपाई के ओवरटाइम करवाकर बहुत-सा डाटा जुटाया जा रहा है। इसके बाद बच्चों के माता-पिता के फोन पर बच्चों के जन्मदिन का बधाई सन्देश आता है कि फला मंत्री उन्हें शुभकामना देते हैं कि वे बड़े होकर देश के लिए 'आम आदमी पार्टी' (?) जैसा अच्छा काम करें! जो शिक्षक डाटा समय पर नहीं दे पाते उनसे जवाब माँगा जाता है। इस तरह डाटा की भूख बढ़ती ही जाती है। डाटा उत्पादन को उसी कड़ी में समझने की जरूरत है, जिसमें दुनियाभर की नवउदारवादी सरकारें नागरिकों के आँकड़ों को अपने प्रचार और लोगों की एक-एक बात पर नजर रखने और नियंत्रण करने के लिए इस्तेमाल कर रही हैं।

शिक्षा विरोधी एजेंडे के तहत बढ़ता शिक्षा बजट

बढ़े हुए बजट का उपयोग गैर-जरूरी कामों और निजी समूहों को लाभ पहुँचाने के लिए हो रहा है। मीडिया में कुछ स्कूलों की खूब वाहवाही हुई है, जहाँ 'विश्वस्तरीय' स्वीमिंग पूल बना दिये गये हैं, बिना इसकी तफ्तीश किये कि अधिकतर स्कूलों में तो खेल के मैदान ही विलुप्त होते जा रहे हैं। चन्द स्कूलों की पाँचसितारा सुविधाओं को कितने बच्चे इस्तेमाल कर पा रहे हैं तथा असल में कौन चाँदी काट रहा है? जहाँ सीसीटीवी पर 670 करोड़ खर्च किया जा रहा है और शिक्षकों को टैब खरीदवाने पर अनुमानित 75 करोड़ का बजट दिया गया है, वहीं कक्षा 9 से 12वीं तक के बच्चों की सीबीएसई फीस माफ करने की आवश्यकता महसूस नहीं की गयी। ये खेल अकादमियाँ पीपीपी के तहत 50 प्रतिशत सीटें सरकारी स्कूलों के बच्चों के लिए मुफ़्त रखेंगी और बाकी बच्चों से फीस लेकर मुनाफा कमाने के लिए स्वतंत्र रहेंगी।

यहाँ 'बोलचाल की अंग्रेजी' सिखाने के नाम पर ब्रिटिश काउंसिल जैसी संस्थाओं को पैर पसारने के अवसर दिये गये हैं। दिल्ली सरकार ने उच्च-शिक्षा के लिए ऋण उपलब्ध कराने में मदद के नाम पर बैंक के समक्ष गारंटर की भूमिका निभाने की नीति की घोषणा करके एक तरफ अपनी 'उदारता' दिखाने की कोशिश की है, वहीं दूसरी तरफ नवउदारवादी एजेंडे के तहत उच्च-शिक्षा को बाजार और निजी मुनाफे के जायज माध्यम के रूप में स्थापित करने का काम किया है, यानी एक तीर से दो निशाने!

नवउदारवाद की प्रयोगशाला बनते स्कूल

शिक्षा पर नवउदारवाद के कसते शिकंजे के प्रमुख कर्ता-धर्त्ता हैं एनजीओ, जिन्हें दिल्ली सरकार ने अपने दफ्तर और नीति निर्माण में प्रमुख स्थान दिया है। एनसीईआरटी की पाठ्य पुस्तकों को हाशिये पर डाल कर इनके द्वारा तैयार की गयी हल्की और घटिया स्तर की सामग्री को स्कूलों पर थोपा जा रहा है। 'सेंटर स्क्वायर फाउंडेशन' नामक कॉरपोरेटी संस्था को 'बाल अधिकार संरक्षण आयोग' के साथ स्कूलों की ग्रेडिंग रिपोर्ट बनाने की भूमिका दी गयी है। यह वही संस्था है, जिसका मुक्त-बाजारवादी घोषित मंत्र ही यह है कि सरकार को निजी स्कूलों में पढ़ने के लिए बच्चों को वाउचर (फंड चिल्ड्रन, नॉट स्कूल्स) देने चाहिए। दुनियाभर में ऐसी ताकतों द्वारा प्रायोजित शोधों और कार्यक्रमों में क्राइसिस ऑफ लर्निंग (अधिगम का संकट, यानी बच्चे 'सीख' नहीं रहे हैं) का जो हौवा खड़ा किया गया है, उसका एक उद्देश्य सार्वजनिक स्कूली व्यवस्था को बदनाम करके नाकारा और विफल घोषित करना है ताकि शिक्षा के बाजार का रास्ता साफ किया जा सके, यानी पहले यही संस्थाएँ सर्वे करवाकर सरकारी स्कूलों, विशेषकर शिक्षकों को नाकारा साबित करती हैं, इसके बाद अपनी किताबें, ट्रेनर्स, टेस्ट लाकर सरकार से पैसे बटोरती हैं, फिर सरकारी स्कूलों को निजी हाथों में सौंपने के रास्ते तैयार करती हैं। यह तर्क देना मक्कारी है कि परिणामों के लिए शिक्षक एकाकी रूप से जिम्मेदार हैं। जबकि बच्चों के सीखने और परिणामों पर उनकी आर्थिक, सामाजिक और स्कूली परिस्थितियाँ भी प्रभाव डालती हैं और इन दोनों की ही जिम्मेदारी राज्य पर होती है।

निजी संस्थाओं को महत्त्वपूर्ण अधिकार और भूमिकाएँ सौंपकर सरकार ने 'स्टेट काउंसिल ऑफ एजुकेशनल रिसर्च एंड ट्रेनिंग' जैसे सार्वजानिक संस्थानों को कमजोर बनाया है। मुख्यमंत्री और शिक्षामंत्री बुद्धिजीवियों की आलोचना को खारिज करके अपनी सतही समझ को लोकप्रियता का जामा पहनाकर महिमामंडित करते रहे हैं।

एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सरकारी स्कूलों को नवउदारवाद की प्रयोगशाला बनाया जा रहा है। इन स्कूलों में अधिकांशतः मेहनतकश वर्ग के बच्चे पढ़ रहे हैं। उनके समय को कई तरीकों से बर्बाद किया जा रहा है और उनकी शिक्षा से अकादमिक हिस्सा

कम किया जा रहा है। स्कूलों का भविष्य इस बात पर निर्भर होता चला जा रहा है कि वे दक्षता के साथ डाटा इकट्ठा करें और इसे कम्प्यूटर पर चढ़ायें, नित नयी शिक्षा-विरोधी नीतियों और योजनाओं को कार्यान्वित करें और इनकी रिपोर्ट सरकार के पास भेजें। इसके लिए दिल्ली सरकार के स्कूलों में प्रत्येक शिक्षक को टैब दिया जा रहा है कि वे कुशलता का ऐसा मॉडल प्रस्तुत करें कि नये-नये विक्रेताओं की लाइन लग जाये। अगर केन्द्र सहित विभिन्न राज्य सरकारों की शैक्षिक नीतियों पर नजर डालें तो स्पष्ट होता है कि 'दक्षता' के नाम पर वे एक तरफ शिक्षा का बजट घटा रही हैं, जबकि दूसरी तरफ सार्वजनिक व्यवस्था और उसके कर्मचारियों पर दोषारोपण लगाकर अपनी गलत नीतियों का ठीकरा उन्हीं पर फोड़ती हैं। मंत्रियों और अफसरों के 'अघोषित इंस्पेक्शन, शिक्षकों को निलम्बित करने, नये टेस्ट शुरू करने' आदि से सम्बन्धित बयान निरन्तर आते ही रहते हैं। प्रत्यक्ष रूप से नियंत्रण के बजाय ऐसे परिणाम आधारित मूल्यांकन के खाके तैयार किये जाते हैं, जो वस्तुगत होने का दावा ठोकते हैं। दरअसल यह ऑडिटिंग और जवाबदेही बढ़ाने का स्वांग नवउदारवादी सरकारों का अपनी नाकामियाँ और विफलताएँ ढकने का एक तरीका है। फिलहाल यह स्पष्ट होता चला जा रहा है कि नवउदारवादी सरकारों के शासन में स्कूल न केवल पूँजीवाद की आवश्यकतानुसार श्रमिकों की फौज तैयार करेंगे, बल्कि सरकारी स्कूलों का इस्तेमाल स्थानीय तथा विशेषकर वैश्विक पूँजी के विभिन्न उपयोगों के लिए किया जायेगा। यह सारा खेल सार्वजनिक शिक्षा को मजबूत करने का नहीं है, बल्कि कुशल शासन का ऐसा मॉडल प्रस्तुत करने का है, जो वैश्विक पूँजी के काम आये। देर-सबेर केन्द्र सहित सभी राज्यों की सरकारों को ऐसा करके दिखाना ही होगा, नहीं तो एजेंट बदल दिया जायेगा।

(साभार : लोक शिक्षक मंच, दिल्ली)

अस्तित्व बनाम अस्मिता

-- मनोरंजन ब्यापारी

कुछ दिन पहले कोलकाता पुस्तक मेले में हुए एक विवाद के सम्बन्ध में 'टेलीग्राफ' में खबर छपी, जिसे देख कर बहुतों ने मुझे फोन किया। यह टिप्पणी उसी के बारे में मेरा स्पष्टीकरण है।

हर रोज हर पल महसूस करता हूँ कि कितनी कुत्सित जिन्दगी है मेरी! मैं जब भी मुँह खोलता हूँ तो कोई न कोई विवाद हो ही जाता है। अगर कुछ लिखूँ तो भी। आज तक फेसबुक के किसी पोस्ट, सभा-सेमिनार में कही गयी मेरी किसी बात पर बहस-विवाद नहीं हुआ हो, ऐसा याद नहीं है। इस बार के पुस्तक मेले में भी एक तूफानी बहस हो गयी, जिसका असर अब भी जारी है और उम्मीद है कि आने वाले दिनों में भी चलता रहेगा। इस कोलकाता पुस्तक मेले में दलित समुदाय के दो अलग प्रान्त के हम दो प्रतिनिधि भी थे। चेन्नयी से कांचा इलइया और बंगाल से मैं। कांचा साहब ने अपने भाषण में कहा (चूँकि मुझे अंग्रेजी समझ में नहीं आती, इसलिए जो मुझे बताया गया, उसके मुताबिक) कि हर दलित को अंग्रेजी सीखने पर जोर देना चाहिए। बल्कि उन्होंने यह भी माँग की कि विद्यालयों में प्राथमिक स्तर से ही अंग्रेजी शिक्षा शुरू कर देनी चाहिए। उन्होंने यह भी कहा कि अपनी पहली किताब अंग्रेजी में लिखने के चलते ही बहुत कम समय में ही वे देश और विदेश में छा गये। अंग्रेजी की जरूरत गहराई से महसूस करने के चलते ही बी आर अम्बेडकर साहब ने अपनी सारी रचनाएँ अंग्रेजी में ही लिखी थी। आदि, आदि।

मेरी बातें उनसे बिलकुल अलग या भिन्न थीं। ऐसा नहीं है कि दलित समाज के एक सितारे ने कुछ कहा है तो उनके साथ सहमत होना ही चाहिए। ऐसी कोई मजबूरी मैं महसूस नहीं करता। मुझे लगा कि वे सही नहीं कह रहे हैं, इसलिए मैं उनके खिलाफ बोला। मैं हमेशा बहुत मजबूती के साथ कहता हूँ कि 'जिस तरह वर्ग के अन्दर जाति है, वैसे ही जाति के अन्दर भी वर्ग है'। अपनी ज्ञान, विद्या, बुद्धि से मैं जितना जान पाया, पहले से ही जिन लोगों ने दलित समाज की समस्याओं को लेकर आन्दोलन का नेतृत्व किया, वे सब समाज के उच्च स्तर के लोग रहे हैं। देखा जाय तो इसी के चलते उन्होंने दलित गरीब मेहनतकश लोगों को संगठित करके जन आन्दोलन तैयार करने के बजाय विद्वान, शिक्षित लोगों की मदद से कानून-अदालत की लड़ाई पर ज्यादा जोर दिया था। इनमें से किसी भी कार्रवाई से सामान्य, निम्न स्तर के दलित लोगों की जिन्दगी की समस्याओं को हल करने की कोई गुंजाइश नहीं थी। दलित और गरीब लोगों की कुल छह समस्याएँ हैं-- रोटी, कपड़ा, शिक्षा, चिकित्सा, मकान और सामाजिक सम्मान। दलित समाज के जो नेता हैं, उनका किसी न किसी तरह से पहली पाँच समस्याओं का हल हो चुका है, सिर्फ एक बचा हुआ है, वह है सम्मान।

वे सिर्फ उसी के बारे में मंच पर मुँह खोलते हैं, अखबारों में लिखते हैं। वे कहना चाहते हैं कि हम शिक्षित बाबू बन चुके हैं, सवर्ण समाज अब तुम हमें भी अपनी बराबरी पर स्वीकार करो और बिना संकोच के हमारे साथ 'रोटी-बेटी' का रिश्ता बना लो। इतना ही मिल जाता तो उनका क्षोभ, गुस्सा सब शान्त हो जाता। लेकिन सामान्य दलित उस सम्मान के लिए नहीं तरसता, उसके दिमाग में ये बात आती ही नहीं। मैंने देखा है 'बाबू'

बाप के उमर के किसी रिक्शा वाले को तू-तड़ाक से बात करता है। वही बाबू जब उस रिक्शा वाले को एक-दो रुपया ज्यादा किराया दे देता है, तब वह कृपा पाकर गदगद हो जाता है। इसकी वजह यह है कि उस एक-दो रुपये में वह थोड़ा और चावल खरीद सकता है। भूख बड़ी पीड़ादायी है, जिससे थोड़ी राहत मिल जायेगी।

मुझे बहुत दिन पहले की बात याद आ रही है। दुर्गापूजा का वक्त था। एक दलित आदमी दुकानों में पानी पहुँचाता था। उसके कुछ स्थाई ग्राहक थे, जिनमें से एक की बिरियानी की दुकान है। यह बहुत मशहूर दुकान है, इसलिए वहाँ बासी, सड़ा सामान नहीं बिकता है। उस दिन कुछ बिरियानी बिका नहीं, इसलिए बच गया था। पानीवाले को देखते ही दुकानदार चिल्लाया, "कल का बचा हुआ चार प्लेट बिरियानी है, ले जा।" पानीवाले ने हल्की आवाज में कहा, "दादा सामने वाली दुकान में पानी दे दूँ, उसके बाद ले लूँगा।" दुकानदार ने कहा, "बहुत देर से तेरा इन्तजार कर रहा हूँ, बर्तन धोना है। लेना है तो ले, वर्ना कुत्ते को दे दूँगा।" मैंने देखा, पानीवाला मुँह लटका कर वहीं अपना गमछा फैला दिया -- बासी और अपमान में सनी हुई बिरियानी गमछे में बाँध लिया। उसको कोई अपमान महसूस नहीं हुआ। लेकिन मेरी पूरी देह दुकानदार की बातों से जलने लगी थी। पानीवाले को बुला कर मैंने कहा, "तू और कुत्ता एक बराबर हैं। तू नहीं लेगा तो कुत्ते को खिलायेगा! ऐसी बात सुनने के बाद भी तूने कैसे बिरियानी ले ली?" दर्द भरी आवाज में उसने कहा, "भाई रे, क्या मुझे समझ में नहीं आया कि वह अपमान कर रहा है? लेकिन समझ के क्या करूँ, बता भाई? पूजा-त्योहार का दिन है, थोड़ा अच्छा खाना भी बच्चों को नहीं खिला पाया। आज बिरियानी ले जाऊँ तो कितने खुश होंगे सब! वही सोचकर अपमान सह लिया मैंने।" ये हैं दलित गरीब समाज के लोग, असहाय, अक्षम, अपमानित।

मैं इसी वर्ग से आया हूँ इनकी बात करने, जिनके पास मान-अपमान को लेकर सोचने का वक्त नहीं है। वे भूख से आजाद होने की चिन्ता से परेशान हैं। ये मेरे ही लोग हैं, जो अपने बच्चों को खाना तक नहीं दे सकते, वे बच्चों को स्कूल कैसे भेजेंगे? भेजते हैं चाय की दुकान में गिलास धोने के लिए, किसी बाबू की कोठी में नौकर का काम करने के लिए। अगर स्कूल भेज भी दें तो कोई दसवीं पार नहीं होता है। चौथी-पाँचवीं तक पढ़ाई खत्म हो जाती है। कैसे सीखेंगे ये अंग्रेजी? अगर पहली कक्षा से ही एक विदेशी भाषा इन पर लाद दी जाय तो न वे ढंग से उसे सीख पायेंगे और न ही अपनी मातृभाषा। इससे बेहतर अगर वे मातृभाषा सीख लें तो उनकी जिन्दगी में बहुत काम आयेगी।

इसीलिए मैंने कांचा इलइया का विरोध किया। मैंने कहा-- जिनकी हैसियत है, वे सिर्फ अंग्रेजी ही क्यों, चाहें तो पाली, हिब्रू भी सीख सकते हैं। लेकिन सामान्य लोगों पर उस भाषा को जबरदस्ती थोपने की जरूरत नहीं है।

अंग्रेजी भाषा बाबू वर्ग की भाषा है, अंग्रेजी सत्ता की भाषा है। मैंने अलग-अलग प्रदेशों में जा कर देखा है, जो फर्राटेदार अंग्रेजी बोलते हैं उनको ज्यादा इज्जत मिलती है। मुझे पता है, अगर वह भाषा कब्जे में आ जाये तो दलित बाबुओं की इज्जत और हैसियत का दायरा बहुत बड़ा हो जायेगा। लेकिन मैं उस भाषा को लेकर लड़ने की बात तब करूँगा, जब मैं जिस वर्ग का इन्सान हूँ, जिनके लिए मैं उठ खड़ा हुआ, उनको पहले पाँच बुनियादी समस्याओं से आजाद करा सकूँगा। अब सबसे पहले वही लड़ाई लड़नी पड़ेगी। रोटी चाहिए, कपड़ा चाहिए, उसके बाद बाकी सब।

मैं तुम्हारा आँकड़ा नहीं हूँ

मैं तुम्हारा आँकड़ा नहीं हूँ, न ही तुम्हारा वोट बैंक
मैं तुम्हारा प्रोजेक्ट नहीं हूँ, या अजायबघर का अजीब।
मैं वो रूह नहीं हूँ जिसे तुम्हारी परवरिश का इन्तजार है,
न ही मैं कोई प्रयोगशाला हूँ
जिसमें तुम्हारे सिद्धान्त को परखना है।

मैं तुम्हारे तोप का चारा नहीं हूँ, या अदृश्य मजदूर,
या इंडिया हैबिटेट सेंटर का मनोरंजन,
मैं नहीं हूँ तुम्हारे वो 'फील्ड', भीड़, इतिहास,
तुम्हारा मदद, अनुताप, या विजय का तमगा।

मैं तुम्हारे इन तमगों को खारिज करता हूँ, नकारता हूँ
तुम्हारे फैसले, तुम्हारे दस्तावेज, तुम्हारी परिभाषा,
तुम्हारे तरीके, नेता और पोषक भी।
क्योंकि वे मेरे मुँह पर नकारते हैं मेरा वजूद,
मेरा नजरिया, मेरी जगह।
तुम्हारी बातें, नक्शे, रेखाचित्र, सूचक-- सब
तुमको उस ऊँचाई पर खड़ा करता है
जहाँ से तुम मुझे नजर झुकाकर देखते हो।

इसलिए, मैं खुदकी तस्वीर बनाता हूँ,
और अपना व्याकरण भी,
अपनी लड़ाई के लिए हथियार भी
मेरे लिए, मेरे लोगों के लिए, मेरी दुनिया के लिए,
और मेरी आदिवासी स्वाभिमान के लिए।

-- अभय खाखा

व्यंग्य

राजनीति में आँधियाँ और लोकतंत्र

-- आनन्द कुमार पाण्डेय

पिछली रात की आँधी के बाद घर बिखरा पड़ा है। जो सामान अपनी जगह होना चाहिए, वहाँ नहीं है। पड़ोसी की चादर मेरे घर में है और मेरे कपड़े सड़क पर। आँधियाँ ऐसी ही होती हैं। सुबह जो धूल हम बाहर फेंकते हैं, रात में आँधी के साथ उससे ज्यादा घर के भीतर आ जाती है। मैं इन्हें रोक नहीं सकता, लेकिन उनके जाने के बाद बद्दुआ दे सकता हूँ। इसी आँधी में कहीं से उड़कर अखबार का एक पन्ना भी आया है। वैसे देश में अखबार हो या उसको लिखने-छापने वाले, वे हल्के से झोंके में उड़ जाते हैं। एक बार मित्र से मेरी शर्त लगी। उसने कहा, "अखबार से हल्के उनके सम्पादक हैं।" मैंने कहा, "नहीं। चौथा खम्बा हल्का नहीं हो सकता। लोकतंत्र बैठ जायेगा। विकलांगों की तिपहिया होती है। चौथे खम्भे के बिना लोकतंत्र विकलांग हो जायेगा। अखबार और उसके सम्पादक को ठोस होना चाहिए।" मित्र अडिग रहा। उसने कहा, "पहले तो लोकतंत्र को चौपाया नहीं होना था। इसे दो पैरों पर खड़ा होना था। चारों पायों में एक पाया बहुत हल्का है बाकी तीन जरूरत से ज्यादा भारी।" देखने में विचित्र लगता है। अखबार और प्रेस वाले बाकी तीन पैरों के नीचे चले जा रहे है। उसकी लुगदी बन रही है। इन सम्पादकों को मालिकों ने चारागाह में खुला छोड़ने की जगह नाद के सामने बाँध दिया है। वे मालिक का चारा खाते हैं और उसे दूध देते हैं। गोबर हम सबेरे अखबार में पढ़ लेते हैं। मेरा एक पड़ोसी अखबार रोज लेता है। पढ़ता कम है, छोटे बच्चे की गन्दगी ज्यादा साफ करता है। यह विरोधाभासों की लय है।

उड़कर आये अखबार में देखता हूँ, सोनिया गाँधी की लड़की प्रियंका गाँधी की फोटो है। नीचे लिखा है-- यह राजनीति की नयी आँधी है। मैं घबरा गया। पीछे लौटकर देखता हूँ। हमारी राजनीति कितनी ही आँधियों से पटी है। इन्हीं आँधियों ने देश की यह दशा की है। भारतीय राजनीति की पहली प्रतिष्ठित आँधी निःसन्देह इन्दिरा गाँधी ही थी। हमने खुद भीड़ के साथ खड़े होकर नारे लगाये थे। उस आँधी में सब हिलने लगा था। लोकतंत्र के दरवाजे तथा चूलें सभी हिल गयीं। हमने इस आँधी के सामने जे पी को तूफान बनाकर खड़ा किया। आँधी-तूफान से हमारी जिन्दगी धूल से तरबतर हो गयी। तूफान के डर से आँधी की ओर फिर लौटना पड़ा।

सभ्यताओं की इसलिए खुदाई करनी पड़ती है कि वे टनों मिट्टी के नीचे दब जाती हैं। यह आँधी तूफान का ही नतीजा है। कुछेक साल पहले हमने अन्ना हजारे वाली आँधी भी झेली। हमने उस समय भी नारे लगाये थे, 'अन्ना नहीं आँधी है, देश का दूसरा गाँधी है।' इस दूसरे गाँधी ने अपना जवाहर पैदा किया। केजरीवाल अन्ना हजारे के जवाहरलाल नेहरू साबित हुए। इस जवाहरलाल ने दूसरे गाँधी को ठेंगा दिखाया। गुरू ने कहा, 'मुझे पहले से मालूम था। मैंने ठेंगा दिखाना ही सिखाया था। यह मेरा सच्चा शिष्य है।' फिर अन्ना हजारे हम लोगों को ठेंगा दिखाकर चले गये। लोकपाल का आन्दोलन उस लड़की के समान ही था, जिसे दूल्हा मण्डप में यह कहकर छोड़ गया हो कि लड़की बदल दी गयी है।

अचानक सुनने में आया कि अन्ना फिर आन्दोलन करेंगे। उसके पहले वे महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री से मिल आये। पूछा, "आपके पास मेरा अनशन तुड़वाने का टाइम कब है? पिछली बार केजरीवाल ने फँसा दिया था। पहले अनशन तोड़ने की तारीख तय कर लें, फिर अनशन करूँगा। मैं मरना नहीं चाहता।" फिर उन्होंने अनशन किया, दो दिन बाद महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री फड़नवीस ने जूस पिलाकर अनशन तुड़वा दिया। अन्ना की आँधी वयोवृद्ध आँधी है, थम-थम कर चलती है। यह आँधी खुद को नुकसान पहुँचने से डर जाती है, खाट पर पड़े-पड़े दूसरों का मुँह देखती है। दूसरों को लगता है कि अनशन पर है। जबकि बुढ़ापे के कारण उसे भूख ही कम लगती है। यह भ्रमित करने वाली आँधी थी और हम दूसरी तीसरी आजादी का नारा लगा रहे थे।

हाँ तो हम रात की आँधी को कोस ही रहे थे कि एक नयी आँधी की सूचना मिली, "प्रियंका नहीं आँधी है, दूसरी इन्दिरा गाँधी है।" इन्दिरा वाली आँधी से एक पूरी पीढ़ी सदमें में थी। नयी आँधी भय पैदा कर रही है। उन्हीं अखबारवालों ने बताया कि लगता है इन्दिरा की राजनीति में वापसी हो रही है। वैसे ही बाल और वही मुस्कान। मुझे मुस्कान में आपातकाल की याद आ रही है। बंगाल के राज्यपाल सिद्धार्थ शंकर रे चले आ रहे हैं और इन्दिरा के कान में कुछ कह रहे हैं। तब इन्हीं अखबारों ने समाचार दिया था कि बंगाल और बिहार से हजारों नौजवान लापता हो गये हैं।

राजनीतिज्ञों की मुस्कान हमेशा स्वागत करने योग्य नहीं

होती। वह डर भी पैदा करती है। आँधियाँ कभी फायदा नहीं पहुँचाती हैं। प्रियंका गाँधी के पति ने कहा कि वह बहुत अच्छी पत्नी और बढ़िया माँ है। अब देश को उनकी जरूरत है। हम कहते हैं कि अभी बच्चों को अपनी माँ की जरूरत है। आपका भी सीबीआई और ईडी में आना जाना लगा हुआ है। हमें इस आँधी की अभी जरूरत नहीं है। अलबत्ता राजनीति में प्रियंका का आना आपकी मजबूरी अधिक लग रही है।

देश अभी एक अन्धड़ को झेल रहा है, जिसने आँखों में धूल और मुँह में गर्द जमा दी है। कुछ देखते और बोलते नहीं बन रहा। देश को अभी इससे उबरना है। घर-आँगन धूल और गन्दगी से अटा पड़ा है। सत्ता सम्भालते ही मोदी ने पुरानी संस्कृति बदलने की बात की। उन्होंने कहा, "अब कांग्रेसी संस्कृति नहीं चलने वाली। वायदे और भ्रष्टाचार पुराने दिनों की बात होंगे और रामराज्य आने से कोई रोक नहीं पाएगा।" अगले ही दिन अखबार में प्रधानमंत्री का वक्तव्य होता है-- "रामराज्य बुरे लोगों को बर्दाश्त नहीं हो रहा।" सोचता हूँ, यह रामराज्य कब आया? रात के अन्धेरे में आया होगा। मुझे तो कहीं नहीं दिखा।

इस रामराज्य की आहट को जनता से पहले नेताओं ने पहचान लिया था। आधे से अधिक कांग्रेसी भाजपा में शामिल हो गये। उन्होंने शोर को और तेज किया कि रामराज्य आ गया। लगा, फिर आँधी आ गयी। हम अन्दाजा भी नहीं लगा पाये और रामराज्य आ गया। भीड़ गाय के खरीददारों को तस्कर समझकर पीट रही है। थाने पर धावा बोलकर थानाध्यक्ष की हत्या कर रही है, ऑक्सीजन की कमी से बच्चे मर रहे हैं और साड़ों के लिए सरकार करोड़ों का बजट दे रही है। यह रामराज्य की आँधी है। हमें छिपने की जगह नहीं मिल रही है।

कांग्रेसवाले भाजपा के मुकाबले अपनी आँधी उतार रहे हैं। हम हिम्मत बाँध रहे हैं। भगवान हमें इन आँधियों को झेलने की हिम्मत दे। हमारी सभ्यता धूल-गर्द से ढँकती जा रही है। नशेमन उजड़ रहे हैं, बागों में कोहराम है। लोकतंत्र इन आँधियों से ढहा जा रहा है। कोई हमें इन आँधियों से बचाये।

सरकार कहती है कि हमने चूहे पकड़ने के लिए चूहेदानियाँ रखी हैं। एकाध चूहेदानी की हमने भी जाँच की। उसमें घुसने के छेद से बड़ा छेद पीछे से निकलने के लिए है। चूहा इधर फँसता है और उधर से निकल जाता है। पिंजडे बनाने वाले और चूहे पकड़ने वाले चूहों से मिले हैं। वे इधर हमें पिंजडा दिखाते हैं और चूहे को छेद दिखा देते हैं। हमारे माथे पर सिर्फ चूहेदानी का खर्च चढ़ रहा है।

-- हरिशंकर परसाई

पेज 27 का शेष...

जहाँ तक प्रत्यक्ष कर का सवाल है। उसे भी दो तरह के लोग चुकाते है। व्यक्तिगत इनकम टैक्स। जो ढाई लाख रूपये से (जो अरबों-खरबों की कमाई करने वाले पूँजीपतियों से वसूला जाता है।) प्रत्यक्ष कर वसूली मे व्यक्तिगत इनकम टैक्स देनेवालों का हिस्सा पिछले पाँच सालों मे 21 फीसदी से बढ़कर 24 फीसदी हो गया।

दुसरी ओर 2014 मे कुल टैक्स का 34 फीसदी कारपोरेट टैक्स के रूप मे पूँजीपतियों से वसूला जाता था जो 2018-2019 मे घट कर 28 फीसदी रह गया। पूँजीपतियों को दी गयी यह रियायत यह 6 फीसदी अरबों-खरबों रूपये के बराबर है, जिसकी भरपाई, पहले से ही बदहास आम जनता से टैक्स वसूल कर की गयी। डीजल, पेट्रोल और रसोई गैस पर भरी टैक्स इसका एक उदाहण है।

बजट मे ि ाक्षा, स्वास्थय और ग्रामीण विकास पर खर्च मे कटौती अभी इस सरकार की मंसा को जाहिर करती है। कुल बजट मे ि ाक्षा पर व्यय 2017-18 मे 3.37 फीसदी हो गया। ि ाक्षा को निजी मुनाफा खोरों के हवाले करने की मुहिम को देखते हुए इसमें कोई आ चय की बात नहीं। आयुमान भारत के बडे-बडे दावे और विज्ञापनों की आड़ में स्वस्थय पर खर्च का हिस्सा भी घटाया गया है।2017-2018 में कुल बजट मे स्वास्थय व्यय 2.47 फीसदी था जो घटकर 2018-19 और 2019-20 मे 2.28 फीसदी रह गया है।यानी वर्तमान कीमतों के हिसाब से और भी कम हो गया।ग्रामीण विकास पर खर्च का हिस्सा 2017-18 मे 6.3 फीसदी या जो 2018-19 में 5.5 फीसदी और 2019-20 मे 4.99 फीसदी कर दिया गया।

उर्वरक पर सब्सीडी 2017-18 मे कुल व्यय के 3.1 फीसदी से घटाकर 2018-19 मे 2.85 फीसदी और 2019-20 मे 2.69 फीसदी हो गया। जाहिर है कि सरकार के आदे ा की बहुत आबादी की बुनियादी जरूरतों की कोई परवाह नहीं है।

कुल मिलाकर यह बजट चुनावी जुमलों और सरकार की बदहवासी का इजहार है।

इसमें सुन्दर सुहाये नामों वाली योजनाएँ जैसे- किसान सम्मान श्रमयोगी मानधन, आयुमान भारत, लेकिन इन के ठोस नतिजों मुंह चिढ़ानें वाले है। पहले से ही जुमलों से तंग आ चुकी जनता पर इन हवाई गोलों क्या असर होगा यह तो कहना कठिन है। लेकिन चुनाव के बाद जो भी सरकार आयेगी वह इन चुनावी जुमलों की भरपाई के लिए जनता पर नयें करों का बोझ लादेगीं ये तय है।

हथियारों की नयी होड़ : दुनिया एक बार फिर तबाही की ओर

-- अजहर

हाल ही में अमरीका ने इंटरमीडिएट रेंज न्यूक्लियर फोर्स (आईएनएफ) सन्धि से हाथ पीछे खींचने का फैसला किया है और रूस पर यह आरोप लगाया है कि रूस के क्रूज मिसाइल बनाने से इस सन्धि की शर्तों का उल्लंघन हुआ है। लेकिन रूस ने इस आरोप को साफ तौर पर नकार दिया है। अमरीका ने रूस को 6 महीने का चेतावनी देते हुए कहा है कि अगर रूस अपने क्रूज मिसाइलों को नष्ट नहीं करता है तो अमरीका इस सन्धि से बाहर हो जायेगा। अमरीका की इस कार्रवाई से परमाणु हथियारों की नयी होड़ शुरू हो जायेगी। जबकि गैर-परमाणु हथियारो की होड़ जारी है।

जब शीत युद्ध अपने आखिरी दौर में था, तब हथियारों की होड़ को खत्म करने के लिए अमरीका और सोवियत संघ ने 1987 में नाभिकीय हथियारों से सम्बन्धित एक समझौता किया था, जिसे आईएनएफ सन्धि के नाम से जाना जाता है। इस सन्धि के तहत अमरीका और रूस ने 500 से 5500 किलोमीटर तक मार करने वाली मिसाइलों को नष्ट करने और प्रतिबन्धित करने का फैसला किया था, लेकिन दोनों देश शुरू से ही एक दूसरे पर सन्धि की शर्तों को न मानने का आरोप लगाते आये हैं।

जिस तरह अमरीका आईएनएफ सन्धि से हाथ पीछे खींच रहा है, उसी तरह 2002 में उसने जार्ज डब्ल्यू बुश के नेतृत्व में छह महीने की नोटिस देकर एंटी बैलास्टिक मिसाइल (एबीएम) सन्धि को तोड़ दिया था। 1972 में अमरीका और सोवियत संघ के बीच बैलेस्टिक मिसाइलों के बारे में सन्धि हुई थी। अमरीका ने इस सन्धि को तोड़ने के पीछे यह तर्क दिया था कि उसके लिए दूसरे देशों के परमाणु ब्लैकमेल से बचने के लिए एक सीमित राष्ट्रीय मिसाइल रक्षा का परीक्षण और निर्माण करना आवश्यक है।

गैर-परमाणु हथियारों की होड़ को देखते हुए दुनिया के अधिकतर देश अपने रक्षा बजट में बेलगाम वृद्धि करते जा रहे हैं। सेना पर सबसे ज्यादा खर्च करने के मामले में अमरीका पहले स्थान पर और चीन दूसरे स्थान पर है। भारत भी अब सेना पर खर्च करने वाले शीर्ष पाँच देशों में शामिल हो गया है। 2019 के अन्तरिम बजट में भारत का रक्षा बजट तीन लाख करोड़ से भी अधिक हो गया है।

साम्राज्यवादी देश हथियारों की धौंस दिखाकर दूसरे कमजोर देशों पर वर्चस्व कायम करने की कोशिश करते आये हैं। इसके चलते वे आधुनिक हथियारों के उत्पादन और परीक्षण में हमेशा आगे रहे हैं। साम्राज्यवादी देशों की हथियारों की होड़ को देखते हुए कमजोर देश भी इस होड़ में शामिल हो गये हैं। कमजोर देशों की जीडीपी का बहुत बड़ा हिस्सा हथियार खरीदने में व्यय हो रहा है। वहाँ की जनता की हालत दिन पर दिन बिगड़ती जा रही है। यहाँ की सरकारें शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार जैसी सामाजिक जीवन की बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के बजाय सेना और हथियारों पर अधिक खर्च करती हैं। अमरीका जैसे साम्राज्यवादी देश कमजोर देशों को हथियार खरीदने के लिए ऋण भी मुहैया कराते हैं और उन पर अपना आर्थिक वर्चस्व स्थापित कर लेते हैं। ऋण के भारी बोझ के नीचे दबे देश साम्राज्यवादी देशों की नीतियों को मानने पर विवश हो जाते हैं। इन नीतियों के जरिये साम्राज्यवादी देश कमजोर देशों का शोषण करते हैं।

हथियारों की होड़ का सिलसिला तभी शुरू हुआ था, जब द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अमरीका और सोवियत संघ दो महाशक्तियों के रूप में उभरे थे। अमरीका 1945 में ही हिरोशिमा और नागासाकी पर परमाणु हमला करके परमाणु हथियारों के मामले अपनी विनाशक छवि को स्थापित कर चुका था। सोवियत संघ ने भी 1949 में अपना पहला परमाणु परीक्षण कर यह साबित कर दिया कि वह भी पीछे नहीं है। इसके बाद इंगलैंड, फ्रांस, चीन, पाकिस्तान और भारत भी इस होड़ में शामिल होते चले गये। शीत युद्ध के दौरान कोरिया युद्ध और वियतनाम युद्ध ने अमरीका और सोवियत संघ के बीच हथियारों की होड़ को और बढ़ा दिया। दोनों एक-दूसरे को डराने-धमकाने के लिए अन्धाधुन्ध हथियारों के उत्पादन और परीक्षण में लगे रहे।

1991 में सोवियत संघ के विघटन के बाद रूस कमजोर पड़ गया और अमरीका एकमात्र महाशक्ति रह गया। अमरीका धीरे-धीरे अन्तरराष्ट्रीय संस्थानों (विश्व बैंक, अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व व्यापार संगठन) के माध्यम से पूरी दुनिया पर अपना वर्चस्व कायम करने लगा।

परमाणु हथियारों के उत्पादन के मामले में अमरीका और रूस सबसे आगे हैं। दुनिया का लगभग 90 प्रतिशत परमाणु हथियार इन्हीं दोनों देशों के पास है। इन दोनों देशों के पास 15-16 हजार परमाणु हथियार हैं, जो पृथ्वी को कई बार नष्ट कर सकते हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान अमरीका द्वारा हिरोशिमा और नागासाकी पर गिराये गये परमाणु बम से होने वाले विध्वंस को आज 75 साल बाद भी भुलाया नहीं जा सकता।

अमरीका आज दुनिया का सबसे बड़ा हथियार निर्यातक देश है। एक रिपोर्ट के अनुसार, हथियारों के निर्यात में अमरीका की 34 प्रतिशत की हिस्सेदारी है। रूस दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा हथियार निर्यातक देश है। इन दोनों देशों के साथ फ्रांस, जर्मनी और चीन इस होड़ में शामिल हैं। स्टॉकहोम -- इण्टरनेशनल पीस रिसर्च इंस्टीट्यूट ने बीबीसी को बताया कि "हथियारों का कारोबार तेजी से फल-फूल रहा है और अब हर साल यह 100 बिलियन डॉलर का अन्तरराष्ट्रीय कारोबार है।" इजराइल जैसे मध्यपूर्व के देश अमरीकी हथियारों के सबसे बड़े ग्राहक हैं। हथियारों की ज्यादा से ज्यादा बिक्री के लिए इस इलाके में अमरीका ने युद्ध जैसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दी हैं। मध्य-पूर्व के देशों में सउदी-अरब सबसे ज्यादा हथियार खरीदता है। सउदी अरब और यमन के बीच चल रहा तनाव और सीरिया, इराक, अफगानिस्तान में युद्ध और गृह युद्ध जारी है। इसके चलते अमरीका के हथियारों के इस्तेमाल के लिए यह क्षेत्र एक प्रयोगशाला की तरह हैं। ओबामा शासन में हुए ईरान के साथ परमाणु समझौते से अमरीका बाहर निकल गया है।

अमरीका और उत्तर कोरिया के बीच परमाणु हथियारों के सम्बन्ध में विवाद चल रहा है। अमरीका उत्तर कोरिया पर परमाणु हथियारों को खत्म करने के लिए दबाव बना रहा है। अमरीका और उत्तर कोरिया के बीच सिंगापुर में हुए सम्मेलन में उत्तर कोरिया के राष्ट्रपति किम जोंग ने इस शर्त पर अपने परमाणु हथियारों को खत्म करने का वादा किया था कि अमरीका उत्तर कोरिया पर लगाये गये अपने प्रतिबन्धों को ढीला करेगा। लेकिन अमरीका द्वारा प्रतिबन्धों को ढीला न करने के उलट में उत्तर कोरिया ने अपने परमाणु हथियार खत्म करने से इनकार कर दिया।

हम जानते हैं कि सोवियत संघ के विघटन के बाद अमरीका की नकेल कसने वाला कोई देश नहीं था। लेकिन धीरे-धीरे रूस ने अपनी स्थिति मजबूत कर ली और दोनों देशों के बीच टकराव एक बार फिर बढ़ता जा रहा है। इधर चीन भी एक आर्थिक महाशक्ति बन कर उभर रहा है और हथियारों की होड़ में शामिल हो गया है।

चीन ने अपनी सेना के आधुनिकीकरण पर जोर देते हुए अपनी थल सेना को 50 प्रतिशत तक कम करने और जल सेना और वायु सेना को बढ़ाने का फैसला किया है।

आज की विश्व परिस्थिति साफ संकेत दे रही है कि चीन, उत्तर कोरिया, रूस, बेनेजुएला, ईरान और अन्य देशों से अमरीका के मतभेद गहराते जा रहे हैं। अमरीका कई अन्तरराष्ट्रीय करारों से भी पीछे हट रहा है। इससे अमरीका और इन देशों के बीच तनाव बढ़ रहा है और युद्ध का संकट गहराता जा रहा है।

मुनाफे और शोषण की इस व्यवस्था में जब तक बाजारों की होड़ को लेकर दुनिया के बँटवारे की प्रक्रिया चलती रहेगी, तब तक युद्ध जैसा माहौल बना रहेगा और दुनिया चैन की नींद नहीं सो पायेगी। मुनाफे और शोषण पर आधारित व्यवस्था के खात्मे से ही युद्धों का खात्मा किया जा सकता है। इसके लिए पिछड़े देशों की शोषित-पीड़ित जनता के साथ साम्राज्यवादी देशों की शोषित-पीड़ित जनता को एकजुट होना होगा। मुनाफे और शोषण पर आधारित इस व्यवस्था को बदलकर एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करनी होगी, जहाँ एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति का और एक देश द्वारा दूसरे देश का शोषण न हो। तभी हथियारों की होड़ और युद्धों का खात्मा किया जा सकेगा।

पूँजीवाद खतरे में है

रघुराम राजन आरबीआई के गवर्नर और आईएमएफ के प्रमुख अर्थशास्त्री रह चुके हैं। फिलहाल वे शिकागो विश्वविद्यालय में अध्यापन कर रहे हैं। उन्होंने हाल ही में कहा कि "मेरा मानना है कि पूँजीवाद खतरे में है क्योंकि अब आम लोगों को इसका लाभ नहीं मिल रहा है। जब कभी ऐसा होता है तो लोग विद्रोह करते हैं।" उन्होंने यह भी कहा कि "सभी को पूँजीवाद ने समान मौके नहीं दिये और सच कहें तो जो लोग इसका खामियाजा भुगत रहे हैं, उनकी स्थिति बेहद खराब है।" गौरतलब है कि खुद रघुराम राजन एक बुर्जुआ अर्थशास्त्री हैं और पूँजीवाद की सेवा करते रहे हैं। 2008 की विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी के बारे में पहले से आगाह करने वाले अर्थशास्त्रियों में से वे एक थे। आज पूँजीवाद कितने गहरे संकट में है, वह इसी बात से पता चलता है कि उसे बचाने वाले अर्थशास्त्री के मुँह से उसके डूबने के बयान निकल रहे हैं। आज सच सिर चढ़कर बोल रहा है।

मोदी सरकार का आखिरी बजट : चुनावी जुमलों का जखीरा

-- दिगम्बर

जाती हुई सरकार का बजट अन्तरिम बजट या लेखा अनुदान माँग (वोट ऑफ एकाउंट) होता है, ताकि नयी सरकार के गठन होने तक अगले वित्तवर्ष के कुछ महीनों का खर्च चल जाये। लेकिन मोदी सरकार ने अपने अन्तरिम बजट को न सिर्फ पूर्ण बजट के रूप में पेश किया, बल्कि चुनावी फायदे के मद्देनजर गुब्बारे में कुछ ज्यादा ही हवा भर दी। और तो और इस बजट में जुमलों का अम्बार लगा दिया और चुनावी 'दृष्टिकोण' पत्र को 2030 तक विस्तारित किया।

हमारा देश आज चौतरफा संकट से घिरा हुआ है। जिन समस्याओं से तंग आकर जनता ने मनमोहन सरकार को हटाया था वे आज पहले से भी विकट रूप धारण कर चुकी हैं। अर्थव्यवस्था की गति मंथर है। 2018 की अंतिम तिमाही में विकास दर 6 फीसदी रहा जो डेढ़ साल में सबसे कम है। विकास दर के आँकड़ों में हेराफेरी करके उसे ज्यादा दिखाने का भंडाफोड़ भी कई संस्थाओं और विशेषज्ञों ने किया था। कृषि संकट बद से बदतर हुआ है। किसान आत्महत्या की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है। बड़े कर्जदारों की जमामारी के चलते बैंक और अन्य वित्तीय संस्थाओं की हालत खस्ता है। नये रोजगार पैदा होने की बात ही क्या लाखों पुराने पद समाप्त कर दिये गये। नतीजतन, बेरोजगारी आज सारी सीमाएँ लाँघ चुकी है। सीएमआईई के मुताबिक पिछले साल बेरोजगारी दर 70 फीसदी बढ़ी है। एनएसएसओ के आँकड़ों के मुताबिक 2017-18 में बेरोजगारी दर 6.1 फीसदी थी जो पिछले 45 सालों में सबसे ज्यादा है। जाहिर है कि मोदी सरकार के विकास, रोजगार और किसानों की आय बढ़ाने के दावे खोखले साबित हुए हैं। ऐसे में अगर मोदी सरकार ने अपने अन्तरिम बजट को पूर्ण बजट बनाकर पेश किया है तो उसमें अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाने के कुछ नीतिगत उपाय दिखने चाहिए थे। लेकिन बजट में ऐसा कुछ भी नहीं है।

5 साल पहले, सत्ता में आने के बाद मोदी सरकार ने 'विकास' और 'रोजगार सृजन' के बहाने मनरेगा जैसी योजना को खत्म करने का भरपूर प्रयास किया था, जिसे ग्रामीण अर्थव्यवस्था की तबाही के जख्म पर मरहम लगाने के लिए कांग्रेस सरकार ने शुरू किया था। भारी विरोध और दबाव के बाद ही मोदी सरकार ने उसे जारी रखा। लेकिन 'विकास' के बड़े-बड़े दावों, हर साल दो करोड़ लोगों को रोजगार देने और किसानों की आय डेढ़ गुनी करने के वादे 'जुमले' ही साबित हुए। इसके चलते आये दिन छोटे-बड़े और उग्र आन्दोलनों का सिलसिला शुरू हुआ था। बेरोजगार नौजवानों का असन्तोष और आक्रोश चरम पर पहुँचने लगा जो तीन राज्यों में भाजपा की पराजय के रूप में सामने आ गया। अब अपने आखिरी बजट में 'विकास' और 'रोजगार सृजन' के वादों से पलटा खाते हुए मोदी सरकार ने मनरेगा जैसी किसी कल्याणकारी योजना से भी नीचे गिर कर सीधे सदाव्रत बाँटने और किसानों के खातों में पैसा डालने पर उतर आयी है।

बजट में प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि के नाम पर 2 हेक्टेयर से कम जमीन वाले किसानों के खाते में 6,000 रुपये सालाना यानी 500 रुपये महीना डालने का फैसला सरकार द्वारा कृषि क्षेत्र और किसानों की तबाही की स्वीकारोक्ति है और चुनाव से पहले की गयी यह घोषणा विज्ञापनों पर अंधाधुंध खर्च के साथ इसका मेल एक तरह की चुनावी रेवड़ी है। दरअसल मोदी सरकार के साढ़े चार साल के शासन के दौरान कृषि और उससे जुड़े क्षेत्र की विकास दर में भारी गिरावट आयी है।

2004-05 से 2013-14 के बीच इस स्रोत का औसत विकास दर 3.7 फीसदी थी जो पहले ही काफी कम थी और ग्रामीण अर्थव्यवस्था की बर्बादी का आईना थी 2014-15 से2017-18 के बीच यह औसत और अधिक गिरकर 2.5 फीसदी रह गयी। जाहिर है कि किसानों की आय बढ़ाने और कृाि क्षेत्र के विकास के बारे में मोदी के तमाम लम्बें-चौड़े वादे चुनावी घ्ोाणाएँ, 'जुमला' बन कर रह गयी।

मोदी सरकार ने हर खेत को पानी और पर ड्रॉप, मोर क्रॉप के नारे तो खूब उछाले, लेकिन त्वरित सिंचाई लाभ योजना खटाई मे पडी है। कैग की रिपोर्ट 2018 के मुताबिक इस योजना मे वित्तीय हेरा-फेरी और योजना पूरी न होने जैसी गड़बडी पायी गयी। किसानों की आमदनी बढाने के विपरित इन चार व्ार्ों मे_कृाि लागतों की कीमत में भारी बढ़ोतरी हुई जबकि सरकार ने जो न्युनतम समर्थन मूल्य घ्ोाित किया, वह 2014 से 2018 के बीच

प्रति त सालाना के बीच ही रहा और उस किमत पर भी सरकारी खरीद नहीं होने के चलते आढ़तियों और निजी व्यापारियों के हाथों किसानों की लूट जारी रही। इस भारी लूट के आगे बजट मे किसानों के लिए प्रधानमंत्री के नाम से 6000 रूपये सालाना सम्मान निधि की घोाणा लागत बढ़ने और उचित मूल्य न मिलने के चलते तबाह हुए किसानों का अपमान है। यह गाय मार कर जूता दान करने जैसा है। उत्तर प्रदे ा सरकार ने किसानों की बिजली बिल मे जो बढ़ोत्तरी की है सिर्फ उसी के चलते आज किसानों को डेढ़-दो हजार रू. महीना अधिक चुकाना पड रहा है। इसके आगे 500 रू. महीनें की अनुकम्पा राि ा मुँह चिढ़ाना नहीं तो भला क्या है? जाहिर है कि अपने कार्यकाल मे कृि क्षेत्र को तबाह करने के कारण भीतर उबलते गुस्से को ाान्त करने के लिए उछाला गया चुनावी जुमला ही है। सच तो यह है की बजट मे घोाित प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि तेलागंना और ओडिसा सरकार द्वारा ाुरू की गयी इससे कही बेहतर रैमूल बन्धू और काकिया योजना की घटिया नकल है। जो रैमूल बन्धू के तहत ही मालिक किसान को 4000 प्रति एकड़ (10,000 प्रति हेक्टेयर) सालाना रा ि दी जाती है, जबकि काकिया योजना भूमिहीन किसानों और गैर क्राक ग्रामीण परिवारों पर भी लागू होती है। यह सही है। कि ये सभी योजनाएं कृि संकट को हल करने के बजाए इसके ि ाकार ग्रामीण आबादी को मरहम लगाने वाली ही है।

ये भी सही है। कि तेलांगाना और ओडिसा सरकार की राहत पैकेज भी चुनाव के मद्देनजर ही घोाित हुआ है। लेकिन वह केवल जमीन के मालिक किसानों तक तो सीमित नहीं है। जैसा मोदी सरकार का पैकेज कृि से जूडें क्षेत्रों की सरकारी उपेक्षा भी बजट मे साफ-साफ दिखाई देती है। इससाल की बजट मे ऱाट्रीय बागवानी मि न, ऱाट्रीय गोकूल मि न, मत्सय पालन के लिए नीली क्रान्ति और दुग्ध उत्पादन के लिए सफेद क्राान्ति कृि ोध एंव ि ाक्षा सबके बजट मे या तो कटौती की गयी है या बहुत मामूली बढ़ोत्तरी की गयी है।

बजट मे अंसगठित क्षेत्र के मजदूरों के लिए पें ान योजना प्रध ाानमंत्री श्रम-योगी मानधन को भी खूब उछाला गया। इसके तहत 1500 रू. कमाने वाले अंसागठित क्षेत्रों के मजदूर 29 व़र्ा की उम्र मे 100 रू. महीना और 18 व़र्ा की उम्र मे 55 रू. महीना जमा करेंगे जिसके बदले उन्हें 60 साल की उम्र के बाद 3000 रू. पें ान मिलेगी पहली बात यह की क्या सरकार 15000 रू. से कम आय वाले लोगों को श्रमयोगी नहीं मानती, दुसरे असगठित क्षेत्र मे आज नौरकी या रोजगार है, कल रहेगी या नहीं, इसकी गारण्टी नहीं।

31 साल तक 100 रू. महीना जमा करने या 42 साल तक 55 रू. महीना जमा करने के बदले उनको जो 3000 रू. महीना पे ान मिलेगी, उससे कौन सा सहारा मिल जाएगा तब तक रूपये का कितना अवमुल्यन हो चुका होगा? साथ ही भारत मे औसत जीवन प्रत्या ाा 68 साल है। जाहिर है कि अंसगठित क्षेत्र की कठिन परिस्थितियों प्राण और व्यवस्था दुर्द ाा को देखते हुऐ इस तंत्र के मजदूरों मे यह औसत उससे भी कम होता है। अब खुद ही हिसाब लगालें, कि यह पें ान योजना एक झाँसा नहीं तो क्या है।?

इस बजट की एक विसंगति यह भी है। कि सरकार ने चुनाव के मद्देनजर जो बडी-बडी घोानाएँ की है। उनकी भरपाई कहां से होगी क्योंकि इस बजट मे जीएसटी के जादूई हथकण्डें के भरोसे कुल अनुमानित राजस्व प्रति पिछले साल 20 फीसदी से गिरकर 14 फीसदी रहने का अनुमान है। इस कमी की भरपायी के लिए सरकार पूँजीगत प्राप्ति पर निर्भर है। जो सार्वजनिक क्षेत्रों की कौडियों के मोल नीलामी और रिजर्व बैंक के अतिरिक्त कोा से हासिल किया जायेगा जिसे देने से मना करने के चलते बेचारा उर्जित पटेल की नौकरी और नया कारिन्दा बिठाना पडा राजस्व वसूली जिसमें टैक्स और गैर टैक्स राजस्व ाामिल है। उसमें गिरावट की वजह बडे पूँजीपतियों को टैक्स मे भारी छूट और जीएसटी की चोरी है। बजट अनुमान मे सं ोधन के बाद अब टैक्स वसूली पहले की तुलना मे 1.8 लाख करोड़ कम रहने की सम्भावना है। जाहिर है कि चुनाव के बाद जो भी सरकार आयेगी वह जनता के उपर यह भारी बोझ डालेगीं।

मोदी सरकार की टैक्स नीति अपने पूर्ववर्ती सरकारों की तुलना मे आम आदमी के प्रति कहीं ज्यादा ात्रुवत रही है। जबकि पूँजीपतियों को सरकार न केवल बैंकों के जरिये मा यत पहुचाया, बाल्कि टैक्स मे भी उनको भारी छुट दी। पिछले पाँच साल के बजट आँकडो में टैक्स वसूली के पैर्टन पर एक नजर डालें, तो यह बात स्पट रूप से समझ मे आ जाती है।

कोई भी सरकार दो तरह के टैक्स वसूलती है। प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रत्यक्ष टैक्स जैसे- इनकम टैक्स, कारपोरेट टैक्स इत्यादि धनी लोग चुकाते है। जबकि अप्रत्यक्ष टैक्स जैसे- जीएसटी, उत्पाद ाुल्क आबकारी इत्यादि सभी लोग चुकाते है। यहां तक कि वह भिखारी भी जो दिनभर भीख माँगकर ाम को बीड़ी माचिस खरीदता है। होना तो यह चाहिए था कि जिसकी कमाई ज्यादा हो उससे ज्यादा टैक्स वसूल किया जाये, लेकिन इस सरकार ने इससे उल्टी धारा बहाने मे पिछली सरकारों को भी पीछे छोड़ दिया। बजट के आँकड़ों के मुताबिक अप्रत्यक्ष कर की वसूली का हिस्सा 2014-15 मे 44 फीसदी था जो बढ़कर 47 फीसदी हो गया। यह 3 फीसदी हजारों करोड रूपये के बराबर है।

शेष पेज 23 पर...

जनता की निगरानी : क्यों और कैसे?

-- आशुतोष

सन्देशवाहकों, दूतों, पक्षियों-कबूतरों के सहारे शुरू हुई सन्देश भेजने की प्रक्रिया चिट्ठी, डाक, पोस्ट और टेलीग्राफ से विकसित होते हुए तार और लैंडलाइन फोन तक पहुँची। जो आज कृत्रिम उपग्रह के माध्यम से मोबाइल और इंटरनेट के रूप में दुनिया के लगभग सभी लोगों को आपस में जोड़े हुए है। शुरू-शुरू में अपने सन्देश की गोपनीयता के लिए लोग भरोसेमन्द सन्देशवाहक इस्तेमाल करते थे, जिसको चुनने में वे पूरी तरह स्वतंत्र होते थे। वे उन्हें यह भरोसा दिलाते थे कि उनका सन्देश बिना पढ़े और बिना किसी बदलाव (हेर-फेर) के पाने वाले तक पहुँचेगा, इसकी जानकारी सिर्फ सन्देश भेजने वाले और पाने वाले को होगी। यह एक धीमी प्रक्रिया थी। इस दौरान सन्देशवाहकों के साथ हुए किसी भी तरह के गलत व्यवहार से लोग सतर्क हो जाते थे और सन्देश को बचाने के लिए जरूरी कदम उठाते थे। लेकिन आज सेकण्ड के कुछ हिस्सों में ही हम अपने सन्देश को दुनिया के किसी भी कोने में इंटरनेट के माध्यम से भेज और पा सकते हैं, लेकिन हमारे पास पहले जैसा भरोसेमन्द दूत नहीं है, जो हमारे सन्देश को बिना पढ़े और बदले पहुँचाये। आज हमें अपने मन की बात कहने से पहले अपने सन्देशवाहक के दिल और दिमाग की बातें सुननी पड़ती हैं और अगर वह इजाजत दे, तब कहीं हम अपने सन्देश को आगे भेज सकते हैं।

संचार के साधन विकसित होने के साथ ही सूचनाओं के आदान-प्रदान पर नियंत्रण और निगरानी की भी शुरुआत हुई। अंग्रेजी हुकूमत के दौरान गुलाम भारत में इसे कानूनी रूप से 1883 के टेलीग्राफ अधिनियम बनाये जाने में देखा जा सकता है, जिसे 1 अक्तूबर 1885 से अंग्रेजों के गुलाम भारत में लागू किया। इसके अनुसार अंग्रेजी हुकूमत आने-जाने वाले हर टेलीग्राफ को बीच में ही पढ़ सकती थी और उसके आधार पर भेजने वाले (या) प्राप्त करने वाले व्यक्ति पर कानूनी कार्रवाई कर सकती थी। यह अधिनियम अंग्रेजों ने आने-जाने वाले हर सन्देश पर नियंत्रण के जरिये अपने शोषण और लूट-खसोट पर टिकी शासन व्यवस्था को कायम रखने के लिए बनाया था। इसका अगला कदम 1898 का इंडियन पोस्ट ऑफिस अधिनियम था, जो सभी आम लोगों के राज्य सरकार और केन्द्र सरकार को डाक द्वारा भेजे जाने वाले सभी पत्रों की जाँच का अधिकार देता था। अंग्रेजी हुकूमत यह सब लोगों की सुरक्षा और शान्ति कायम करने के नाम पर करती थी। अंग्रेजों द्वारा सुरक्षा और शान्ति के इस करतूत को आज हम सभी जान और समझ चुके हैं कि वे किसकी सुरक्षा और किसके लिए शान्ति चाहते थे।

1947 के बाद भारत के शासकों ने अंग्रेजों से राजनैतिक आजादी पाने के साथ-साथ उनकी ढेर सारी सड़ी-गली और गलीज औपनिवेशिक व्यवस्था को भी हुबहू अपनाया और कई मामलों में तो उनसे भी आगे बढ़-चढ़ कर लागू किया, जैसे-- 1885 और 1898 के अधिनियम को जारी रखना और उसके बाद के पुराने कानूनों में बदलाव और कुछ नये कानून। 1967 में (यूएपीए) अधिनियम के अनुसार, टेलीग्राफ से बीच में चुरायी गयी सूचना को एक साक्ष्य के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। वहीं 1973 के सीआरपीसी के सेक्शन 91 और 92 का एक साथ उपयोग करते हुए जिलाधिकारी, पुलिस और न्यायालय किसी भी व्यक्ति, डाक विभाग या टेलीग्राफ के अधिकारी से कोई भी दस्तावेज या सामान जाँच-पड़ताल, पूछताछ और (ट्रायल) के लिए ले जा सकते हैं। यह डाक, पोस्ट और तार के समय की बातें हैं।

इक्कीसवीं सदी की शुरुआत के साथ 2000 में इन्फॉर्मेशन टेक्नालजी अधिनियम बनाया गया। इस अधिनियम ने नयी तकनीक के साथ मिलकर नये आधार और नये आयाम निर्धारित किये, जिसमें डिजिटल संचार और सूचनाओं पर नजर रखना, उन्हें बीच में पढ़ना, सन्देश को डिक्रिप्ट करना (कूट भाषा से सामान्य शब्द में बदलना) और उसे इकट्ठा करना को मान्यता दी गयी। इसमें सबसे घातक बदलाव 2008 में हुआ। जब इसमें सेक्शन 69 जोड़ा गया, जिसमें बिना किसी 'सार्वजनिक सुरक्षा' या 'सार्वजनिक आपातकाल की स्थिति' के ही किसी भी व्यक्ति या सम्बन्ध रखने वाले से ऐसा करवा सकते हैं और ऐसा न करने पर सात साल की सजा या जुर्माना हो सकता है। इससे भी भयानक 69बी है, जो मेटा डेटा (बातचीत के मूल भाव) को बीच में पढ़ सकता है। मेटा डेटा में समय, भेजने वाला, प्राप्त करने वाला और जगह के नाम को

भी पढ़ता है। ऐसा करने के पीछे का मकसद सरकार ने संज्ञेय अपराधों की रोकथाम, देश की सुरक्षा और किसी अपराध में जाँच बताया। एक तरफ यह अधिनियम बिना किसी आपातकाल जैसी स्थिति के ये सब करने की इजाजत देता है, वहीं दूसरी तरफ सरकार ऐसा करने के पीछे देश की सुरक्षा जैसे तर्क देती है। एक ही अधिनियम के लिए दो बिल्कुल विपरीत बातें कहकर सरकार अपने रवैये को साफ कर देती है।

2009 में केन्द्र सरकार ने केन्द्रीय निगरानी प्रणाली की घोषणा की, ताकि वह अपने आप सूचनाओं को सीधे-सीधे देख और पढ़ सके। इसके बाद 2013 में एक और कानून में बदलाव के जरिये टेलीकाम कम्पनियों को सरकारी निगरानी में रखना जरूरी किया गया। 2013 में ही सूचना मंत्रालय के नये मीडिया खण्ड ने ऑनलाइन मीडिया पर निगरानी शुरू की।

व्यवस्था को नियंत्रित करने के लिए हमेशा से न्यायपालिका, सैन्य और सुरक्षा एजेंसियाँ किसी न किसी रूप में कार्यरत रही हैं, जो जनता पर हमेशा नजर रखती आयी हैं। हर शताब्दी की तरह इक्कीसवीं शताब्दी की भी अपनी विशेषता है, जिसमें इंटरनेट का सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक ताने-बाने पर असर महत्त्वपूर्ण है। आज हर व्यक्ति पर प्रत्यक्ष रूप से निगरानी नहीं की जा सकती है, इसलिए अब यह व्यवस्था इसी काम को चोर दरवाजों से करती है। उदाहरण के लिए हम इंटरनेट पर क्या-क्या करते हैं, इस सब की निगरानी सरकारें सीधे-सीधे नहीं कर सकतीं। इस काम को चोर दरवाजे से सेवा देने के नाम पर हमारा डेटा ले लेकर पूरा किया जाता है, जिसमें सेवा लेने के बदले हमारी व्यक्तिगत सूचनाओं को किसी न किसी सार्वजनिक या निजी कम्पनी को देना ही पड़ता है। यहाँ महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सार्वजनिक और निजी सेवा प्राप्त करने के लिए यह शर्त अनिवार्य है। बिना इन्टरनेट की सुविधाओं के हमारी जिन्दगी नहीं चल सकती। इसी वजह से हम इनके इस्तेमाल से इनकार नहीं कर सकते। उदाहरण के लिए-- ई-मेल और सर्च इंजिन। कोई भी सार्वजनिक कम्पनी ई-मेल की सुविधा नहीं देती। इसमें निजी कम्पनियों का एकाधिकार है। लेकिन डिजिटल युग की लगभग सभी सरकारी या निजी सुविधा लेने के लिए यह सेवा अनिवार्य है। आज जरूरी सुविधाओं में ई-मेल का उपयोग नौकरी, परीक्षा के फॉर्म भरने से लेकर पासपोर्ट, वोटर कार्ड, पैन कार्ड बनवाने के लिए होता है। इसके अलावा ऑनलाइन सामान खरीदने, ट्रेन और बस का टिकट तथा सोशल मीडिया से जुड़ने के लिए भी यह अनिवार्य है। एक दूसरे के सन्देशों और जानकारियों को साझा करने और अपने जरूरी दस्तावेजों को ऑनलाइन सुरक्षित रखने के लिए भी यह जरूरी है। इसी तरह कई और ई-मेल की जरूरी सेवाएँ हैं।

ई-मेल आईडी बनाने के लिए प्रत्यक्ष रूप से नाम, जन्मतिथि और लिंग की जानकारी की जरूरत होती है। वहीं चोर दरवाजे से भौगोलिक स्थिति, नेटवर्क सुविधा देनेवाले का नाम (आईपी एड्रेस, यानी इंटरनेट पर आपका पहचान नम्बर), इस्तेमाल किया जाने वाला उपकरण (यूनीक नम्बर के साथ), समय और तारीख के साथ सुरक्षित किया जाता है और आपके ई-मेल आईडी के साथ जोड़कर ई-मेल सुविधा देनेवाले के सर्वर (बहुत ज्यादा डेटा सुरक्षित रखने की जगह) में हमेशा के लिए सुरक्षित कर दिया जाता है। दुनियाभर की बहुत ही कम कम्पनियाँ इसे कुछ समय बाद अपने सर्वर से हटाती हैं और सिर्फ कुछ कम्पनियाँ ही इसे सुरक्षित नहीं करतीं (वे भी इन सब सूचनाओं को जानती हैं)। ये सूचनाएँ हर बार ई-मेल इस्तेमाल करने पर सुरक्षित की जाती हैं। कुछ समय इस्तेमाल के बाद सुरक्षा और बेहतर सुविधा के लिए ई-मेल सुविधा देने वाली कम्पनी मोबाइल नम्बर जोड़ने की भी माँग करती है। ई-मेल कम्पनी द्वारा सीधे-सीधे लिये गये डेटा और उनके पास सुरक्षित डेटा को एक साथ जोड़कर देखने पर हम पाते हैं कि उनके पास हमारे नाम, उम्र, वे सभी लोग जिनसे हमने सम्पर्क किया, वह हर एक सन्देश जिसको हमने भेजा या पाया, हर एक सुविधा जिसका हमने इस्तेमाल किया (हमारे खाने-पीने, दवा-दारू से लेकर पहनने-ओढ़ने की खरीददारी) से लेकर हमारे सभी बैंक खाते की सभी जानकारी है। ऑनलाइन सुरक्षित सभी फोटो और दस्तावेज भी उसमें शामिल हैं।

दूसरी सबसे जरूरी और सुलभ सुविधा है सर्च इंजिन। सर्च इंजिन हमारे लिखे हुए की वर्ड (जिसके बारे में हम जानना चाहते हैं) को दुनियाभर में ऑनलाइन फैले अरबों फाइलों में से ढूँढता है और हमें दिखाता है। सर्च इंजिन के मौजूदा उदाहरण गूगल, बिंग, याहू, डकडकगो, यांडेक्स, बायडू इत्यादि हैं। इसका इस्तेमाल कुछ भी जानने-समझने या खोजने के लिए किया जाता है। अब यह सर्च इंजिन पर निर्भर करता है कि वह कौन-कौन सी सूचनाओं को दिखाता है। इसके लिए उसकी अपनी चयन प्रक्रिया होती है, जिससे वह सर्च के बाद आये हुए परिणामों को दिखाता है। यह एक बहुत महत्त्वपूर्ण बात है कि वह किसी भी डेटा को काट-छाँट सकता है। अगस्त 2017 में आयी रिपोर्ट के अनुसार, फेक न्यूज रोकने के नाम पर गूगल कम्पनी ने लगभग पचास प्रतिशत (आधा) वेबसाइटों को सेंसर किया, जो किसी खास तरह की सूचनाओं को बताती हैं और अपनी अलग तरह की विचारधारा से मतलब रखती हैं। ऐसा करके ये सीधे-सीधे बताती हैं कि सिर्फ इनकी तरह ही सोचिए और जो ये दिखाएँ सिर्फ वही देखिए। यही इनका मूल चरित्र भी है। पैसा लेकर किसी सर्च को पहले दिखाना

इन कम्पनियों की कमाई का मुख्य जरिया है।

सर्च इंजिन के पास हर तरह का डेटा होने की वजह से ये जीवन के लगभग हर पहलू में एक ट्रेंड (चलन) निर्धारित करता है। उदाहरण के लिए साल 2019 में किस तरह के कपड़े बाजार में रहेंगे, ये भी निर्धारित करने लगी हैं। यही बात खान-पान से लेकर बाकी आदतों के लिए भी सही है। इस तरह की तमाम व्यक्तिगत सूचनाएँ सर्च इंजिन और ई-मेल कम्पनियाँ ई-मार्केटिंग कम्पनियों को बेच देती हैं। इससे ई-मार्केटिंग कम्पनियाँ लोगों के बीच जाकर सर्वे किये बिना यह जान लेती हैं कि लोगों को किस तरह के उपभोक्ता मालों की जरूरत है। ये सभी सूचनाएँ उत्पादक और ई-मार्केटिंग कम्पनियों द्वारा बाजार की माँग के अनुरूप उपभोक्ता मालों के उत्पादन और वितरण में इस्तेमाल की जाती हैं। इससे इन कम्पनियों का मुनाफा बहुत बढ़ जाता है।

इन्टरनेट सुविधा की सूची में अगले नाम आधिकारिक रूप से कम जरूरी हैं, लेकिन सामाजिक रूप से बहुत जरूरी सोशल मीडिया और मैसेन्जर अप्लिकेसंस का है। सोशल मीडिया के मुख्य उदाहरण फेसबुक और ट्विटर हैं और मैसेन्जर अप्लिकेसंस के व्हाट्सएप और फेसबुक मैसेन्जर हैं। इन्टरनेट का इस्तेमाल करने वाले लगभग सभी लोग किसी न किसी रूप में इन सुविधाओं का उपयोग करते हैं। सोशल मीडिया एक तरफ जहाँ लोगों को लोगों से जोड़ने का काम करती है, वहीं अपनी तेज गति और ज्यादा लोगों तक पहुँच होने के चलते ये गलत सूचनाओं को भी लोगों तक पहुँचाती है। इनके इस्तेमाल से एक क्लिक में लाखों-करोड़ों लोगों तक अपनी बात पहुँचायी जाती है। आज सत्तासीन पार्टियाँ और उसके लोग इसका इस्तेमाल अपनी अच्छी छवि और अपने से अलग सोच वाले की गलत छवि बनाने के लिए करते हैं।

आडिओ-विजुअल श्रेणी में यूट्यूब है, जिसमें सर्च के साथ-साथ सोशल मीडिया की भी कुछ सुविधा है-- जैसे, अपनी आईडी और चैनल बनाना। इन सभी सुविधाओं को प्रदान करने वाली कम्पनियाँ भी उपयोग करने वालों के बारे में डाटा जुटाती हैं और उनका विश्लेषण करके अपने मुनाफे के लिए उपयोग करती हैं।

2018 के दिसम्बर में मिनिस्ट्री ऑफ होम अफेयर्स ने 10 केन्द्रीय एजेंसियों को अधिसूचना जारी कर दिया कि वे ऑन लाइन संचार से सम्बन्धित डाटा का अवरोधन, निगरानी और डिक्रिप्ट करें। इस अधिसूचना ने देश की राजनीति और नागरिक समाज में हड़कम्प मचा दिया। सरकार पर जनता की निजता भंग करने के आरोप भी लगे। बचाव में सरकार को कहना पड़ा कि निगरानी से सम्बन्धित उसने कोई नया आदेश नहीं दिया, बल्कि वह 2009 के सूचना तकनीकी-नियमों को ही लागू कर रही है, जिसे कांग्रेस की सरकार के समय में ही पारित किया गया था।

यहाँ सबसे अहम सवाल यह है कि क्या राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए ही सरकार पूरी जनता की जासूसी करना चाहती है या बात कुछ और है? 2017 में उच्चतम न्यायालय ने अपने एक फैसले में कहा था कि निजता का अधिकार एक मूल अधिकार है और उसकी अवहेलना के लिए कुछ उपयुक्त और वैध कारण होने चाहिए, जैसे-- राष्ट्रीय सुरक्षा। तो क्या देश की पूरी जनता से ही राष्ट्रीय सुरक्षा को खतरा पैदा हो गया है, जिसके लिए सरकार पूरी जनता की जासूसी करना चाह रही है। दरअसल, यह बात सही है। जुटायी गयी सूचना के चोरी होने, उससे राजनीतिक पार्टियों द्वारा लाभ उठाने, कम्पनियों द्वारा आर्थिक लाभ कमाने और उसके दुरुपयोग की अन्य सम्भावनाएँ बनी रहती हैं और पिछले दिनों ये सभी सम्भावनाएँ हकीकत में बदल गयीं। लेकिन जनता की निगरानी का असली मकसद इससे कहीं अधिक गम्भीर है। राष्ट्रीय सुरक्षा को जनता से कोई खतरा नहीं है, बल्कि देश के शासकों को जनता से गम्भीर खतरा है। वे जानते हैं कि उन्होंने जनता को लूटकर कंगाल बना दिया है और अपनी तिजोरी भर ली है। इसी का नतीजा है कि देश के एक प्रतिशत उच्च वर्ग के पास देश की सम्पदा का 61 प्रतिशत हिस्सा है। वे गरीबी के नरक के बीच अपने स्वर्ग में बैठकर जो रंगरेलियाँ मना रहे हैं, वह अधिक दिनों तक सुरक्षित नहीं रहने वाला है। मजदूरों, किसानों, आदिवासियों और गरीब दुकानदारों के आन्दोलन-प्रदर्शन कभी भी व्यवस्था परिवर्तन की लड़ाई में बदल सकते हैं, जिसके बाद देश की जनता उन्हें उनके स्वर्ग से बेदखल कर देगी। और उस स्वर्ग पर अपना अधिकार कर लेगी। इसीलिए उन्होंने अपने प्रतिनिधियों को इसे काबू में करने के काम में लगा दिया है। देश में आन्दोलन करने वाले किसानों, मजदूरों और आदिवासियों को माओवादी तथा आतंकवादी कहकर दबाया जा रहा है। ऐसी स्थिति में अगर किसी आन्दोलनकारी की जानकारी सरकार के पास होगी, मसलन वह कब, कहाँ, क्या था और किससे मिला था, जिसे वह व्यक्ति कब का भूल चुका होगा, उसके माध्यम से उसके खिलाफ साजिश की एक ऐसी कहानी गढ़ी जा सकती है, जो अपने आप में एक पुख्ता सबूत बन जायेगी और उसे आसानी से अपराधी साबित किया जा सकेगा। बात साफ है, वही व्यवस्था अपनी जनता की जासूसी कराती है, जो जनता का विश्वास खो चुकी हो। जिस संसद में अपराधी भरे पड़े हों, उससे जनता की जासूसी और निगरानी जैसे घिनौने कामों से बेहतर की कितनी उम्मीद की जा सकती है?

फेक न्यूज, ट्रोलिंग और फोटो, वीडियो एडिटिंग : भाजपा की चुनावी रणनीति

-- अमरपाल

अक्सर सोशल मीडिया के 'फेक न्यूज' (झूठ खबर) की पोल तो खुलती ही रही है, लेकिन जब सत्ता में शामिल कोई आदमी इस काम को सचेत रूप में करता है, तब हमें और भी ज्यादा सजग और होशियार हो जाना चाहिए और हर खबर को सच की कसौटी पर कसकर परखना चाहिए।

हम सभी जानते हैं कि 2014 के संसदीय चुनाव और उसके बाद कई राज्यों के चुनाव हुए और उनमें भारतीय जनता पार्टी की जीत हुई। इसे भाजपा ने 'मोदी लहर' कहकर देशभर में प्रचारित किया। दरअसल यह 'मोदी लहर' नहीं थी, बलिक चुनाव को अपने पक्ष में करने की सोची-समझी रणनीति का नतीजा थी। यह रणनीति और कुछ नहीं, वर्षों से चली आ रही तीन-तिकड़मों का नयी तकनीक के माध्यम से नया अवतार है।

एक समय भाजपा के डेटा विश्लेषक रहे शिवम शंकर सिंह का कहना है कि भाजपा चुनाव जीतने के लिए देशभर में जातिवाद फैलाने और साम्प्रदायिक दंगों को बढ़ावा देने के लिए सोशल मीडिया की तकनीक का एक खास तरह से इस्तेमाल करती है।

आज सोशल मीडिया गलत-सही प्रचार का एक बड़ा हथियार बन गया है। यह किसी को भी लोकप्रिय बनाकर या बदनाम करके सत्ता में पहुँचाने का या सत्ता से बाहर करने का काम कर रहा है। शंकर सिंह ने 'कारवाँ' पत्रिका को बताया कि 2014 में भाजपा का डेटा सेटअप बहुत मजबूत बन गया था, जिसे आईटी सेल के जरिये बनाया गया था। इसी के जरिये चुनावों की रणनीति बनायी गयी थी। जाति-धर्म के अनुसार मतदाता सूची को मोबाइल नम्बर के साथ मिलाया गया (आधार कार्ड के जरिये, क्योंकि इस पर घर का पूरा पता और मोबाइल नम्बर होता है)। इसके बाद लोगों को व्यक्तिगत सन्देश भेजे गये, जैसे-- समाजवादी पार्टी का मुख्य वोटर यादव समुदाय है, जो अन्य पिछड़ी जाति में आता है, तब भाजपा ने यादवों और दलितों को छोड़कर दूसरी अन्य पिछड़ी जातियों, जैसे -- जाट, गुर्जर, कश्यप, कुम्हार, सैनी, लोहार, बढ़ई, नाई, जोगी, अहीर और वर्मा आदि को अपना लक्ष्य बनाया और इन्हें सन्देश दिया कि यादवों को ही आरक्षण का सारा फायदा पहुँचाया जा रहा है। इसलिए जब तक समाजवादी पार्टी सत्ता में रहेगी, यादवों के अलावा किसी को इसका फायदा नहीं मिलेगा। इन सन्देशों के अलावा दूसरे 'फेक न्यूज' भी भेजे जाते हैं, जिनमें मिलते-जुलते लोग, उनके रंग-रूप, कद-काठी, पहनावा, रहन-सहन, भौगोलिक क्षेत्र और परिस्थिति के अनुसार घटना की चीजों, वीडियो और फोटो का इस्तेमाल किया जाता है, जैसे-- सीरिया का वीडियो भेजकर कहा गया कि देखो मुजफ्फरनगर में क्या हो रहा है, जिसमें मुस्लिम लड़के मिलकर एक नौजवान को मार रहे थे। वहीं एक साइकिल और मोटर- साइकिल की टक्कर वाली मुजफ्फरनगर की ही घटना को मुस्लिम लड़के द्वारा हिन्दू लड़की को छेड़ने में तब्दील करके इसे हिन्दुओं की इज्जत से जोड़ कर फैलाया गया। इसके चलते पश्चिमी उत्तर प्रदेश के कई हिस्सों में दंगे हुए और देश के बड़े हिस्से में हिन्दू-मुस्लिम के बीच नफरत का माहौल बना। गौरतलब है कि 6 फरवरी को अदालत ने साइकिल और मोटरसाइकिल टक्कर के इस झगड़े में मरने वाले तीन नौजवानों (जिनमें एक मुस्लिम और दो हिन्दू थे) के केस में नौ मुस्लिमों को सजा का फैसला दिया है।

इसी तरह जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में नारों वाली वीडियो क्लिप में छेड़छाड़ करके दिखाया गया कि इसमें भारत विरोधी नारे लगाये गये थे। हाल ही में दिल्ली की एक न्यायिक जाँच में खुलासा हुआ कि भारत के खिलाफ नारे लगे ही नहीं थे। अभी हाल-फिलहाल में पुलवामा हमले के बाद भी 'फेक न्यूज' के मुताबिक तथाकथित मिग 16 हवाई जहाज से की गयी सर्जिकल स्ट्राइक-टू में 350 आतंकवादियों के 'मार गिराने' के और आतंकवादियों के कैम्पों को 'नेस्तानाबूद' करने की वीडियो और खबरों को पूरे देश में फैलाया गया। जबकि सच्चाई यह है कि जो हवाई हमला दिखाया जा रहा है, वह एक वीडियो गेम अरमा-टू का एक हिस्साभर है, जो जुलाई 2015 में यू ट्यूब चैनल पर प्रसारित किया गया था। इसके बाद जो मकान क्षतिग्रस्त दिखाये जा रहे हैं और जो लोग मारे गये दिखाये गये हैं, वह भी पाकिस्तान के 2013 के भूकम्प में हुई तबाही और बरबादी के हैं।

ऐसी 'फेक न्यूज' भाजपापरस्त आधिकारिक चैनलों से नहीं भेजी जाती हैं, बल्कि 'नमो समर्थक 2019 बनारस', 'कट्टर हिन्दू सेना' या 'हिन्दू महासभा' जैसे वाट्सअप समूहों से भेजी जाती हैं। इनसे अलग भी कई समूह हैं, जैसे-- 'वी सपोर्ट इंडियन आर्मी' और 'वी सपोर्ट नमो' नामक पेज। इनका दावा है कि इनके 15 लाख से अधिक समर्थक हैं। लेकिन भाजपा का कहना है कि ये पेज इनके नहीं हैं, इन्हें इनके समर्थक चला रहे हैं। दरअसल इन पेजों को, इन वाट्सअप समूहों को चलाने के लिए डेढ़ से दो करोड़ रुपये प्रतिमाह खर्च करने होते हैं। सवाल यह है कि यह धन आ कहाँ से रहा है? ऐसी झूठी वीडियो और फेक न्यूज को दिखाकर ही आज सोशल मीडिया जनता में फूट डालने का काम कर रहा है। वह जाति और धर्म के नाम पर देश के लोगों में एक दूसरे के प्रति नफरत फैलाने का काम कर रहा है और 'पाकिस्तान पाकिस्तान' चिल्लाकर नकली देशभक्ति फैलाने का काम कर रहा है, ताकि जनता को उनके असली मुद्दों से भटकाया जा सके।

आज झूठ फैला कर जनता को गुमराह करने के लिए सोशल मीडिया की इस आईटीसेल के साथ ही इलेक्ट्रानिक मीडिया के कई न्यूज चैनल सबसे आगे हैं। प्रिंट मीडिया के अखबार भी इनसे पीछे कतई नहीं हैं। 'जी न्यूज' चैनल द्वारा '2000 के नये नोट में चिप है' जैसी बेहूदी अफवाह फैलायी गयी इसका पर्दाफाश होने के बावजूद चैनल के रिपोर्टर और मालिक ने माफी नहीं माँगी। बेहया और झूठे लोग मीडिया में भर गये हैं। कई बार न्यूज चैनलों और अखबारों ने भी फेक न्यूज को टीवी समाचारों और खबरों में बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया है।

सोशल मीडिया काफी शक्तिशाली माध्यम है। अन्य मीडिया, जैसे-- न्यूज चैनल, अखबार, पत्रिका आदि के द्वारा भी लोग जानकारी पाते हैं, लेकिन उनके लिए लोगों को खुद पहलकदमी लेनी पड़ती है। जबकि सोशल मीडिया नयी-नयी झूठी-अधझूठी और सच्ची खबरें लगातार अपने आप पहुँचाता रहता है। यह लोगों के मोबाइल, लेपटाप अथवा कम्प्यूटर इंटरनेट खुलते ही आ जाता है। हमारे वाट्सएप, फेसबुक पर मैसेज के तौर पर ऐसी 'फेक न्यूज' आती ही रहती हैं। दरअसल इसका इस्तेमाल आम लोग भी करते हैं, सभी पार्टियाँ करती हैं, लेकिन इसका सबसे ज्यादा इस्तेमाल शासक वर्ग की पार्टी ही करती है।

मोदी शासन में सोशल मीडिया पर सही बात कहने और सरकार से सवाल पूछने वालों पर जबरदस्त ट्रॉलिंग होती है। यहाँ कुछेक उदाहरण ही काफी होंगे, जैसे -- पत्रकार बरखा दत्त, राणा अयूब, रवीश कुमार, अभिसार शर्मा आदि कई दूसरे पत्रकार और ऐंकरों को भद्दी से भद्दी गालियाँ देना, उन्हें जान से मारने की धमकी देना, उनके परिवार को उठाकर ले जाने और बच्चों को उठा ले जाने की धमकी देना, उनकी माँ-बहनों के साथ अश्लील हरकतें करने की धमकी देना, उनके चेहरे पर तेजाब फेंकने, उनसे बलात्कार करने, किसी अश्लील नग्न तस्वीर पर महिला पत्रकारों के चेहरे चस्पा कर उन्हें अपमानित करने, लोगों में उनकी छवि खराब करने, साथ ही कॉल, फेसबुक और वाट्सअप पर मैसेज और फोटो रेफर करने आदि की वारदातें एक या दो बार नहीं, बल्कि आये दिन होती रहती हैं।

इसके बावजूद सच तो यही है कि जनता की ताकत को कभी कोई तानाशाह दबा नहीं पाया है, न आगे दबा पायेगा। जनता के सामने दबी हुई असलियत को सामने लाने का काम भी सच्ची सोशल मीडिया ही करती है, जैसे -- मीडिया विजिल, द वायर, न्यूज क्लिक, आल्ट न्यूज, एनडीटीवी का प्राइम टाइम और ऐसे प्रगतिशील लोग निर्भीक होकर सरकार की झूठी बातों और फेक न्यूज की असलियत को उजागर करते रहते हैं।

एक मुहावरा है कि 'झूठ के पाँव नहीं होते'। ऐसा लग रहा है कि बिना पाँव वाले झूठ अब इंटरनेट के जरिये आ रहे हैं। लोगों का डेटा इनके हाथ लग जाने के कारण इनका झूठ लोगों के बेडरूम से होते हुए उनके दिमाग तक आ जाता है। इतने शातिर, फरेबी और बहुरुपियों भीड़ में आज हमें खबरों के मामले में बहुत ज्यादा चौकन्ना रहने की जरूरत है।

मलबे का मालिक

शासन करने का
एक ढंग यह है :
सब कुछ मिट्टी में
मिला देना

और फिर मलबे पर
खड़े होकर कहना :
मित्रो!
हमें यह विनाश ही
मिला है
विरासत में

--पंकज चतुर्वेदी

डिलीवरी ब्वाय की नौकरी

न्यूज चैनल और सोशल मीडिया पर एक वीडियो बार-बार दिखाया गया, जिसमें एक डिलीवरी ब्वाय ग्राहक के खाने में से थोड़ा खाना खाकर वापस पैक कर देता है। मध्मम वर्ग के लोगों के बीच यह चर्चा का विषय बन गया। उन्हें लगा कि उनका मँगाया खाना सुरक्षित नहीं है। इस घटना से डिलीवरी ब्वाय के प्रति घृणा का बढ़ना और कम्पनी के प्रति भरोसा उठना लाजिमी था। और हुआ भी वैसा ही। लेकिन कम्पनी ने ग्राहकों का भरोसा जीतने के लिए तुरन्त कार्रवाई की और एक न्यूज चैनल के माध्यम से उस डिलीवरी ब्वाय को सरेआम बेइज्जत किया, सार्वजनिक रूप से माँफी मँगवायी और अन्त में उसे नौकरी से निकाल दिया। इसके साथ ही कम्पनी ने अपने ग्राहकों से खाने की टैम्पर्ड पैकिंग का वादा भी किया। इस पूरे घटनाक्रम में कम्पनी का प्रचार भी खूब हुआ। लेकिन सवाल यह है कि क्या किसी न्यूज चैनल और सोशल मीडिया पर इस मुद्दे पर चर्चा हुई कि डिलीवरी ब्वाय किन परिस्थितियों में काम करते हैं? क्या सही मायने में उनका काम रोजगार कहा जा सकता है? इन मुद्दों पर कहीं कोई खास चर्चा नहीं हुई।

भारत में सभी कम्पनियों को अपना कारोबार बढ़ाने का अवसर दिया गया है। वे अति मुनाफा कमाने की स्थिति में हैं। कम्पनियों को बढ़ती बेरोजगारी का पूरा फायदा मिल रहा है। इससे उन्हें सस्ते श्रमिक मिल जाते हैं। इन कम्पनियों में प्रशिक्षण के दौरान प्रशिक्षुओं को तरह-तरह का प्रलोभन दिया जाता है। उन्हें बताया जाता है कि वे पाँच से दस घण्टे काम करके पन्द्रह हजार से लेकर तीस हजार रुपये तक कमा सकते हैं। लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है। उन्हें यह कहकर धोखे में रखा जाता है कि तुम कम्पनी के पार्टनर हो। लेकिन यह एक छलावा होता है। कम्पनी के असली पार्टनर तो शेयर होल्डर होते हैं, जो कम्पनी में पूँजी निवेश करते हैं। कम्पनी और भी झूठ बोलती है, जैसे-- ऑर्डर डिलीवरी होने के बाद वापस आने का रुपया मिलेगा। जो कभी नहीं मिलता। हैल्पलाइन नम्बर हमेशा ऑन रहेगा। लेकिन रात में कोई नहीं उठाता। अगर ऑर्डर करने वाली कोई लड़की या महिला अकेले में बुलाये तो वर्दी उतारकर उसकी इच्छा पूरी करने के लिए चले जाना, आदि। शाम 7 बजे से रात 12 बजे तक काम करने वाले डिलीवरी ब्वाय को ऑर्डर मिलने के बाद पाँच रुपये रेस्टोरेंट तक जाने के, पाँच वहाँ इन्तजार करने के और चार रुपये प्रति किलोमीटर ग्राहक तक जाने का पैसा मिलता है। लेकिन वापस आने का उसे एक भी रुपया नहीं मिलता है। अगर ग्राहक की आखिरी स्थिति रेस्टोरेंट से पाँच किलोमीटर की दूरी से अधिक गूगल मैप पर दिखाई दे जाये, इसके बावजूद डिलीवरी ब्वाय को कुल तीस रुपये ही मिलते हैं। वापसी के रुपये कम्पनी नहीं देती। ऑर्डर को पिकअप करने से लेकर डिलीवरी करने तक जो मेहनत डिलीवरी ब्वाय करता है, उसका पूरा मेहनताना भी कम्पनी उसे नहीं देती।

शाम 7 बजे से रात 12 बजे तक काम करने वाले डिलीवरी ब्वाय अगर एक हफ्ते में 1150 रुपये का काम कर देता है तो कम्पनी 375 रुपये की प्रोत्साहन राशि देती है। लेकिन इस राशि को लेने के लिए कुछ जरूरी शर्तें बना दी गयी हैं, जो आमतौर पर न पूरी हो पाती हैं और न किसी को यह राशि मिल पाती है। पहली शर्त है कि पूरे 6 दिन शाम 7 बजे से रात 12 बजे तक ड्यूटी पर रहेगा। दूसरी शर्त है कि शनिवार और रविवार छुट्टी नहीं करेगा।

डिलीवरी ब्वाय महीने भर में मुश्किल से आठ हजार रुपये कमा पाता है, जिसमें बाइक का तेल और रख-रखाव का खर्चा तीन हजार रुपये तक आ जाता है, बचे हुए पाँच हजार में उसे अपनी गुजर-बसर करनी होती है।

कुछ समस्याएँ हैं, जिनका एक डिलीवरी ब्वाय रोज सामना करता है, जैसे-- ग्राहक का गलत पता, डिलीवरी ब्वाय जब पते पर पहुँचता है तो अक्सर उसे विकट परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है, जैसे-- ग्राहक का फोन न मिल पाना, शराब पीया ग्राहक डिलीवरी ब्वाय से गाली-गलौज और मारपीट करता है। और बिना पैसा दिये भगा देता है। हर आर्डर को तीस मिनट में पूरा करने का मानसिक दवाब होता है। सैकड़ों बार मैसेज और फोन आते हैं। ज्यादा ऑर्डर और ज्यादा कमाई के मानसिक दबाव के कारण गाड़ी पर वह नियंत्रण खो देता है और कई बार दुर्घटना घट जाती है। इसके अलावा ऐसी कई छोटी-मोटी समस्याएँ हैं जिन्हें डिलीवरी ब्वाय रोज झेलता है और वही उन्हें समझ सकता है। अभी हाल ही में दिल्ली में एक डिलवरी ब्वाय बिजली के खम्बे से टकराया और उसकी मौत हो गयी।

दिल्ली, मुम्बई, नोएडा, गुड़गाँव, फरीदाबाद, देहरादून हर जगह से दुर्घटनाओं की खबरें आती रहती हैं। लेकिन फिर भी हर ऑर्डर पर ही उसे जोखिम उठाना पड़ता है। देहरादून में डिलीवरी ब्वाय का काम करने वालों ने कम्पनी के जन विरोधी नियमों का विरोध भी किया और तनख्वाह बढ़ाने के लिए कहा तो मैनेजर ने उन्हें नौकरी से निकालने की धमकी दी। उसने कहा कि कम्पनी तुम्हारी जगह दूसरे लोगों को रख लेगी। तीन महीने बाद भी इन लोगों को बीमा कार्ड नहीं दिया गया। पूछने पर बताया गया कि जोन अपग्रेडेशन हो रहा है, इसलिए देरी हो रही है।

डिलीवरी ब्वाय लगातार मानसिक तनाव में काम करता है।

उसे यह सोचने का भी समय नहीं मिलता कि कम्पनी उसे पूरा मेहनताना भी नहीं दे रही है और इसके खिलाफ उसे संघर्ष करना चाहिए। कुछ डिलीवरी ब्वाय तनाव और शारीरिक थकान से छुटकारा पाने के लिए नशे का सहारा भी लेते हैं। अगर ऑर्डर कैन्सल होता है तो कम्पनी उस खाने को कचरे के डिब्बे में फेंक देती है और डिलीवरी ब्वाय को खरी-खोटी सुनाती है। क्या किसी न्यूज चैनल या अखबार ने यह सच्चाई दिखाई? क्या इन मजदूरों की हालत मीडिया ने देखी? नहीं। बिकाऊ मीडिया से ऐसी उम्मीद बेमानी है।

क्या यह वाकई में एक सम्मानजनक रोजगार है, जिसमें जान-माल का खतरा हमेशा रहता है, कल की कोई गारंटी नहीं होती और कम्पनी कर्मचारियों के कल्याण की कोई जिम्मेदारी नहीं लेती। ऐसे पेशों के ज्यादातर मजदूर सुविधाओं का अभाव झेलते हैं। ऐसे कामों में खटने को मजबूर हैं, जहाँ हालात जानवरों से भी बदतर हैं। कम्पनियाँ आये दिन श्रम कानूनों की धज्जियाँ उड़ा रही हैं और सरकारें कम्पनी मालिकों के लिए श्रम कानूनों को खत्म करती हैं, जिससे इनकी लूट में कोई रुकावट न आये। अचरज की बात है कि श्रम मंत्रालय ऐसे कामों को रोजगार की श्रेणी में रखता है। वह अपने आँकड़े चमकाने की कोशिश के चलते ऐसा करता है। इसके बावजूद आज 6.1 प्रतिशत दर से बेरोजगारों की संख्या बढ़ रही है। बढ़ती बेरोजगारी की वजह से कम्पनी मालिकों को सस्ते मजदूर आसानी से मिल जाते हैं।

-- कुलदीप

पश्चिमी उत्तर प्रदेश में नदियाँ मौत परोस रही हैं।

पश्चिमी उत्तर प्रदेश के निवासी जल संकट और प्रदूषित नदियों से अपरिचित नहीं हैं। लेकिन यह संकट कितना भयावह रूप ले चुका है, इसकी उन्होंने शायद ही कल्पना की हो। गाजियाबाद आधारित ईटीएस लैब ने मुजफ्फरनगर के भोपा इलाके के पानी का परीक्षण करने पर पाया कि एक लीटर पानी में लेड 2.15 मिलीग्राम है, जिसकी अधिकतम मात्रा 0.01 मिलीग्राम होनी चाहिए। यानी पानी में लेड की मात्रा अधिकतम सीमा से 215 गुना अधिक है। इसी तरह अमोनिया 14 और लोहा 8.19 मिलीग्राम है जो अधिकतम 0.5 और 0.3 मिलीग्राम होने चाहिए।

इस इलाके का भूजल पीकर लोग तरह-तरह की बीमारियों का शिकार हो रहे हैं। इनमें त्वचा रोग और कैंसर के रोगी बड़ी संख्या में हैं। बच्चों में मानसिक बीमारियों का प्रकोप फैल रहा है। इस इलाके की काली नदी का पानी प्रदूषण के चलते इतना काला हो चुका है कि स्थानीय निवासी यह मानने लगे हैं कि काले पानी की वजह से ही इसका नाम काली नदी पड़ा है, लेकिन गाँव के बुजुर्ग बताते हैं कि उनके बचपन में काली का पानी इतना साफ होता था कि मछलियाँ तैरती हुई दिख जाती थीं और राहगीर अंजुली में उठाकर इसका पानी पीया करते थे।

जब हालात बद से बदतर हो गये तो 8 अगस्त 2018 को राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण (एनजीटी) ने इलाके के 124 उद्योगों को बन्द करने और उनके खिलाफ केस दर्ज करने का आदेश दिया। ये उद्योग पश्चिमी उत्तर प्रदेश की 6 नदियों में प्रदूषण घोलते हैं। इससे पहले जुलाई में केन्द्रीय प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड (सीपीसीबी) की एक जाँच में पाया गया कि हिन्डन नदी के आस-पास के 168 इलाकों में से 93 इलाके का भूजल पीने लायक नहीं है। इन इलाकों के भूजल में फ्लोराइड, सल्फेट, तेल और ग्रीस तथा भारी धातुएँ घुली हुई हैं। इससे लीवर, किडनी, आंतों में इंफेक्शन तेजी से फैल रहा है। हेपेटाइटिस बी, हेपेटाइटिस सी, लीवर कैंसर, आंतों के कैंसर, स्किन कैंसर और गुर्दे की बीमारियाँ लोगों को अपना शिकार बना रही हैं। इन इलाकों की 6 नदियाँ गाजियाबाद, गेटर नोएडा, मेरठ, मुजफ्फरनगर, शामली और सहारनपुर को सिंचती थीं। लेकिन अब ये इन इलाकों में जहर बोने का काम कर रही हैं। सीपीसीबी की रिपोर्ट में यह भी बताया गया कि इलाके की 195 फैक्ट्रियों में से 119 ने कचरा सफाई का कोई उपकरण नहीं लगा रखा है। ये फैक्ट्रियाँ अपना सारा कचरा सीधे इन नदियों में बहा देती हैं। इसके साथ ही रिपोर्ट यह भी दावा करती है कि 232 फैक्ट्रियाँ 65,646 केएलडी गन्दा पानी (एक केएलडी का अर्थ है-- 1000 लीटर गन्दा पानी रोज बहाना) बिना साफ किये हिन्डन में बहाती हैं। इस तथ्य से साफ पता चलता है कि रोज कितनी बड़ी मात्रा में नदियों को प्रदूषित किया जा रहा है। उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड (यूपीपीसीबी) ने यूपी जल निगम को निर्देश दिया है कि इन इलाकों में स्वच्छ पेयजल की आपूर्ति सुनिश्चित करे। लेकिन उसका यह आदेश भी नक्कारखाने में तूती की आवाज बनकर रह गयी।

-- विक्रम प्रताप

भारत में विस्थापन की भयावह होती समस्या

भारत में विस्थापन की समस्या साल-दर-साल और विकराल रूप लेती जा रही है। संयुक्त राष्ट्र के एक रिपोर्ट में बताया गया कि में भारत में पिछले साल 28 लाख लोग विस्थापित हुए। इसके दो मुख्य कारण हैं। पहला है-- आपदाओं के चलते कुल 24 लाख लोगों को विस्थापन का शिकार होना पड़ा है और दूसरा है-- पहचान, जातीय और धार्मिक संघर्षो, हिंसा और बढ़ते युद्धोन्माद के चलते कुल 4 लाख 48 हजार लोग विस्थापित हुए हैं। विस्थापन की समस्या से प्रभावित देशों में भारत का स्थान तीसरा है।

भारत में सूखा सम्भावित क्षेत्र 68 प्रतिशत है। भूकम्प से प्रभावित क्षेत्र 60 प्रतिशत और 75 प्रतिशत तटीय हिस्से चक्रवात और सुनामी से प्रभावित हैं। प्राकृतिक आपदाओं और तेजी से होते जलवायु परिवर्तन के चलते देश के कई हिस्सों में हालात ऐसे हो गये हैं कि इन जगहों पर लोगों के लिए गुजर-बसर करना बेहद मुश्किल है। बुन्देलखण्ड, लातूर, मराठवाड़ा और विदर्भ के इलाके ऐसे हैं, जहाँ भयंकर सूखे के चलते इन इलाकों में लोग दाने-दाने को मुहताज हो गये। जिन्दगी की जद्दोजहद में यहाँ के लोगों को अपनी जमीन से विस्थापित होना पड़ रहा है।

भारत में आर्थिक असमानता के चलते आज भी कई ऐसे इलाके हैं, जो बेहद गरीब हैं, जो सुविधाओं और सुरक्षाओं के अभाव में हैं। शहर और गाँव के बीच का अन्तर बहुत बड़ा है। असमान विकास के चलते गाँव में रोजगार और जीविका के साधन न के बराबर है। इसके चलते लोग गाँवों से उजड़कर शहरों में विस्थापितों की जिन्दगी जीने को मजबूर हो गये हैं। विस्थापितों के सामने आजीविका, क्षेत्रवाद, जातिवाद और पहचान का सवाल विकट रूप में सामने खड़ा हो जाता है। जैसे-- मुम्बई में बसने वाले पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार के कामगारों और विस्थापितों को महाराष्ट्र से निर्वासित करने के लिए राज ठाकरे ने मराठी बनाम बिहारी आन्दोलन चला रखा है। पिछले दिनों गुजरात की घटना से हम सभी वाकिफ हैं। गुजरात में बिहार और उत्तर प्रदेश के कामगारों को पकड़कर पीटा गया। उन्हें गुजरात छोड़ने की धमकियाँ दी गयीं।

विकास के नाम पर हर वर्ष जमीन अधिग्रहण की जाती हैं, जैसे-- बाँध-निर्माण के लिए, रेल-लाईन, सड़क-निर्माण, रीयल स्टेट, खनन, राष्ट्रीय राजमार्ग, औद्योगीकरण और स्पेशल इकोनोमिक जोन (सेज) और अन्य कारणों के चलते भारी संख्या में आदिवासी किसान और गाँव के मजदूर विस्थापित हो रहे हैं। आजादी के बाद से 2004 के बीच लगभग 6 करोड़ लोग विस्थापित हुए हैं। इनमें 40 प्रतिशत आदिवासी और 20 प्रतिशत अनुसूचित जातियों के लोगों को विकास और औद्योगीकरण की बलि-वेदी पर चढ़ा दिया गया। उड़ीसा, छत्तीसगढ़ और झारखण्ड में कोयला, लौह-अयस्क और अन्य खनिज पदार्थ भारी मात्रा में पाये जाते हैं। यहाँ से लूट तभी सम्भव है, जब यहाँ के आदिवासियों को विस्थापित किया जाये। नन्दीग्राम, सिंगूर, नियमगिरि, काशीपुर और देश के कई दूसरे हिस्सों में सेज के नाम पर लोगों की जमीनों का अधिग्रहण किया गया। इस लूट के खिलाफ जनता के आन्दोलन आज राष्ट्रीय स्तर पर चल रहे हैं।

2011 की जनगणना के अनुसार, उत्तराखण्ड में वीरान हो चुके गाँवों की संख्या तेजी से बढ़ी है। पिछले सात सालों में 700 से ज्यादा गाँव वीरान हो चुके हैं। अब यहाँ कोई नहीं रहता। इन्हें भुतहा गाँव के नाम से जाना जाता है। पिछले दस सालों में 3.83 लाख लोगों ने गाँव छोड़ दिया है। इनमें से 50 प्रतिशत लोगों ने आजीविका की तलाश में गाँव को छोड़ा है। ज्यादातर लोग गाँव छोड़ कर रिश्तेदारों के यहाँ चले गये। उत्तराखण्ड के दूर-दराज के गाँवों में बिजली की समस्या, स्कूल की समस्या और आजीविका की समस्या मुख्य है। इसके चलते लोगों का पलायन तेजी से बढ़ा है।

पिछले सौ सालों में चन्द मुट्ठीभर लोगों ने अपने मुनाफे की हवस में पर्यावरण को विनाश के कगार पर पहुँचा दिया है। इसके चलते तापमान में वृद्धि, बाढ़, बिन मौसम बरसात, बादल फटने जैसी आपदाएँ लगातार बढ़ रही हैं। इसके चलते भी लोगों को विस्थापन का शिकार होना पड़ा है। लाखों लोग रोजगार के अभाव में गाँव से शहरों की तरफ आते गये हैं। वे शहरों में ठेला-खोमचा लगाते हैं या छोटी-मोटी मजदूरी करके जिन्दगी गुजारते हैं। इनके पास न रहने के लिए घर है और न पेट भरने के लिए अनाज।

--- अनुराग मौर्य

डी कम्पनी के जरिये टैक्स चोरी

टैक्स की चोरी पर कार्रवाई का दावा करने वाले भारत के सुरक्षा सलाहकार अजीत डोभाल के दोनों बेटों का नाम हेज फंड कम्पनी खोलने और टैक्स हैवन के जरिये कारोबार में सामने आया है।

इस घटना को 'कारवाँ' पत्रिका में 'एक और डी कम्पनी' के शीर्षक से प्रकाशित किया गया है। डी कम्पनी का शीर्षक अब तक दाउद इब्राहीम के गैंग को दिया जाता था, आज अजीत डोभाल और उनके बेटों-- विवेक और शौर्य के कारनामों को दिया गया है।

एक खोजी पत्रकार ने अमरीका, इंग्लैंड, सिंगापुर और केमैन आइलैंड से व्यापारिक दस्तावेज इकट्ठे करके डोभाल के बेटों की कम्पनियों का खुलासा किया है। ये कम्पनियाँ हेज फंड और ऑफशोर के दायरे में आती हैं।

केमैन आइलैंड एक टैक्स हैवन है, जो टैक्स चोरों की जमात का एक अड्डा है। "टैक्स हैवन" ऐसे देश हैं, जहाँ अन्य देशों के मुकाबले बहुत कम टैक्स लगता है। ऐसे देशों में कम्पनी खोलना अपने आप में सन्दिग्ध है।

प्रधानमंत्री मोदी द्वारा नोटबन्दी की घोषणा के तेरह दिन बाद, 21 नवम्बर 2016 को केमैन आइलैंड में विवेक डोभाल ने अपनी कम्पनी का पंजीकरण कराया था। इसके साथ ही यह भी पता चला है कि विवेक डोभाल भारत का नागरिक नहीं है, बल्कि वह इंग्लैंड का नागरिक है, सिंगापुर में रहता है और जी एन वाई एशिया कम्पनी का निदेशक है। इसकी और जाँच पड़ताल के बाद यह भी स्पष्ट हुआ कि डोभाल के दोनों बेटों का कारोबार एक-दूसरे से जुड़ा हुआ है। जबकि कानूनी तौर पर वे इसे अलग-अलग दिखाते हैं। शौर्य डोभाल केमैन आइलैंड स्थित एक दूसरी कम्पनी, जे एस एम ए प्राइवेट लिमिटेड का प्रमुख है। उसकी कम्पनी के कई अधिकारी विवेक डोभाल की कम्पनी में भी काम करते हैं। इससे यह बात पुख्ता हो जाती है कि यहाँ किसी वित्तीय घोटाले की खिचड़ी पक रही है। विवेक डोभाल के अलावा उसकी कम्पनी के दो अन्य निदेशक भी हैं-- डॉन डब्ल्यू ईबैक्स और मोहम्मद अलताफ मुस्लियाम।

डॉन डब्ल्यू ईबैक्स का नाम इंडियन एक्सप्रेस द्वारा छापे गये पैराडाइज पेपर्स में भी आ चुका है। उसके पहले इसका नाम इसी तरह फर्जी कम्पनियाँ खोलने, और निवेश के नाम पर पैसे को इधर से उधर करने के मामले में पनामा पेपर्स में आया था। पैराडाइज पेपर्स और पनामा पेपर्स दोनों में ही वॉल्कर्स कॉरपोरेट लिमिटेड का नाम है, जो विवेक डोभाल की कम्पनी की संरक्षक कम्पनी है।

गौरतलब है कि 2017 के पैराडाइज पेपर्स की तरह, 2015 के पनामा पेपर्स में भी दुनियाभर के उन वित्तीय घोटालेबाजों का नाम सामने आया था, जो टैक्स चोरी के लिए पनामा 'टैक्स हैवन' के जरिये व्यापार करते हैं। यह बहुत आपत्तिजनक बात है कि एक ओर सरकार काला धन वापस लाने की बात करती है और काले धन के खिलाफ लड़ाई की बात करती है, तो दूसरी ओर सरकार के सुरक्षा सलाहकार अजीत डोभाल के बेटों का खुला खेल है, जो न केवल टैक्स हैवन के जरिये व्यापार करके अपनी तिजोरी भरते हैं, बल्कि वित्तीय हेरा-फेरी भी करते हैं। इसके लिए उन्होंने वित्तीय तंत्र का पूरा जाल बिछा रखा है।

-- ईशान

पेज 37 का शेष...

बेरोजगारों की बढ़ती तादाद को देखकर व्यवस्था द्वारा कुछ ऐसे कदम भी उठाये जाते हैं, जो बेरोजगारी पर पर्दा डाल सकें। इन्हीं में से एक है 'रोजगार मेला', जिसका आयोजन समय-समय कराया जाता है। इससे लग सकता है कि सरकार बेरोजगारी को लेकर गम्भीर है। लेकिन सच्चाई कुछ और है। जनवरी 2019 में दिल्ली के त्यागराज स्टेडियम में रोजगार मेला लगाया गया। वहाँ अलग-अलग कम्पनियों के 75 स्टाल लगे थे, जिन्होंने करीब बारह हजार नौकरियाँ देने का दावा किया था। साक्षात्कार के बाद ज्यादातर नौजवान निराश हो गये, क्योंकि बहुत कम नौजवानों को नौकरी मिली और जिन्हें मिली भी उनकी तनख्वाह बहुत कम थी। इस तरह के मेले वास्तव में कम्पनियों की स्वार्थपूर्ति का साधन होते हैं। कम्पनियों के पास सस्ते श्रम के लिए नौजवानों से मोल-भाव करने का ज्यादा विकल्प होता है। यहाँ चयनित लोगों के आँकड़े दिखाकर सरकार वाहवाही लूट लेती है।

-- अजय गुप्ता

पिछले 45 सालों में बेरोजगारी की सबसे ऊँची दर

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण कार्यालय (एनएसएसओ) की रिपोर्ट के अनुसार देश में 2017-18 में बेरोजगारी दर 6.1 फीसदी पहुँच गयी, जिसका खुलासा 31 जनवरी 2019 को 'बिजनेस स्टैंडर्ड' अखबार ने किया। बेरोजगारी की यह दर पिछले 45 सालों में सबसे ऊँची है, जिसे सरकार ने छिपाने का भरपूर प्रयास किया।

यह आँकड़ा वास्तविक तस्वीर नहीं बताता। स्थिति और भी भयानक है, क्योंकि सांख्यिकी विभाग अपने सर्वे में बेरोजगारों की श्रेणी में उन्हीं लोगों को शामिल करता है, जो सक्रिय रूप से रोजगार खोज रहे हैं। जो लोग निराश होकर नौकरी खोजना बन्द कर देते हैं, उनको बेरोजगार की श्रेणी में नहीं रखा जाता है।

एनएसएसओ भारत के सांख्यिकी एवं कार्यक्रम क्रियान्वयन मंत्रालय का एक विभाग है, जिसके कर्मचारी घर-घर जाकर पूछताछ करके रिपोर्ट पेश करते हैं। यह विभाग सरकार के अधीन है। कोई भी सत्ताधारी पार्टी इसके आँकड़ों में फेरबदल कर सकती है। इसको रोकने के लिए 2005 में एक स्वतंत्र विभाग, राष्ट्रीय सांख्यिकी आयोग (एनएससी) बनाया गया, जिसका काम एनएसएसओ के आँकड़ों की पुष्टि करना है।

बात खुलकर सामने तब आयी, जब सरकारी दबाव के विरोध में एनएससी के अध्यक्ष पी सी मोहनन और जे वी मीनाक्षी ने इस्तीफा दे दिया। जीडीपी और श्रम शक्ति के आँकड़ों को लेकर सरकार से इन दोनों सदस्यों के काफी मतभेद थे। एनएससी में सात सदस्य होते हैं। घटना के समय इसके तीन पद खाली थे। चार सदस्यों में से दो ने इस्तीफा दे दिया, बाकी बचे दो लोग सरकार के ही लोग थे। प्रधानमंत्री आर्थिक सलाहकार परिषद के अध्यक्ष बिबेक देबराय ने कहा कि 'सरकार नयी रिपोर्ट जारी करेगी, जिसमें बताया जायेगा कि रोजगार में कितनी बढ़ोतरी हुई है।' यह सम्भव है, क्योंकि सरकार द्वारा आँकड़ों के साथ बाजीगरी करना कोई मुश्किल काम नहीं है। दूसरी तरफ सुधार के नाम पर ज्यादातर मंत्रालयों की कार्यप्रणाली में फेरबदल कर दिया गया है।

टीसीए अनन्त की अध्यक्षता में एक नया पैनल बना, जिसको रोजगार की विश्वसनीयता के आँकड़ों को जमा करने की जिम्मेदारी दी गयी। जुलाई 2018 में पैनल को रिपोर्ट देनी थी। लेकिन उसने छह महीने का अतिरिक्त समय माँग लिया। इससे पहले जो लेबर रिपोर्ट आती थी, उसे बन्द कर दिया गया। इससे सरकार की मन्शा पर सवाल उठ रहे हैं।

सेन्टर फॉर मॉनिटरिंग इंडियन इकॉनमी के अनुसार, 2018 में ही एक करोड़ दस लाख नौकरियाँ खत्म हुईं। वर्ल्ड इकॉनमी फोरम द्वारा 2018 में जारी रिपोर्ट के अनुसार देश के 15 से 30 साल की उम्र के आधे नौजवान न तो रोजगार कर रहे हैं और न ही पढ़ाई कर रहे हैं। आज ज्यादातर व्यावसायिक संस्थान बेरोजगार पैदा करने की मशीन बन चुके हैं। देश में हर साल एक करोड़ बीस लाख लोग बेरोजगारों की भीड़ में शामिल होते हैं। इन बेरोजगारों से सरकार आवेदन फॉर्म का दाम बढ़ाकर पैसा लूटती है। आज सरकार का कोई भी विभाग ऐसा नहीं है, जहाँ पर पद खाली न हों, लेकिन उनको भरने के लिए सरकार कोई कदम नहीं उठा रही है। संसद में सरकार ने बताया कि केन्द्र सरकार के विभागों में 4,12,752 पद खाली हैं। देश के 363 विश्वविद्यालयों में 63 हजार पद खाली हैं, और 36 हजार सरकारी अस्पतालों में 2 लाख से ज्यादा पद खाली हैं। पंजाब के सरकारी कालेजों में करीब 70 फीसदी पद खाली हैं। वहाँ 200 से ज्यादा शिक्षक संविदा पर रखे गये हैं।

श्रीकृष्ण महिला कॉलेज, बेगुसराय में 10,500 छात्राओं के लिए सिर्फ नौ शिक्षक हैं। यानी एक शिक्षक लगभग 1200 छात्रों को पढ़ाता है। सरकार इन सीटों को भरने के लिए कोई जहमत उठाना नहीं चाहती। इंडियन एक्सप्रेस के अनुसार, त्रिपुरा में वर्तमान सरकार ने नयी सरकारी नौकरियों पर रोक लगा दी। मुख्य सचिव का बयान आया था कि सरकार का खर्च बढ़ गया है, इसलिए यह कदम उठाया गया है।

देश में बेरोजगारी किस तरह पैर पसारे हुए है, इसका अन्दाजा नौकरी के पदों के लिए छात्रों द्वारा किये गये आवेदनों से लगया जा सकता है। पिछले साल रेलवे के ग्रुप सी और डी के 90 हजार पदों के लिए करीब तीन करोड़ युवाओं ने आवेदन किया था। यूपी पुलिस सन्देशवाहक के 62 पदों के लिए जिसकी योग्यता पाँचवीं पास थी, 93 हजार आवेदन किये गये, जिसमें 50 हजार स्नातक, 28 हजार स्नातकोत्तर, सात सौ पीएचडी और सात हजार आवेदन उन छात्रों के थे, जो पाँचवीं से बारहवीं पास थे। ये मामूली पद करोड़ों छात्रों के लिए मृगमरीचिका समान हैं, जिसको सालों तक कड़ी मेहनत के बाद भी पाना असम्भव है।

शेष पेज 36 पर...

विश्वविद्यालयों में 13 प्वाइंट रोस्टर

ंभारत के लगभग हर विश्वविद्यालय में 13 प्वाइंट रोस्टर के मुद्दे पर संघर्ष का माहौल बना हुआ है। इस 13 प्वाइंट रोस्टर ने विश्वविद्यालय शिक्षकों को दो खेमों में बाँट दिया है। एक खेमे में इसके समर्थक और दूसरे खेमे में विरोधी हैं। विरोध ने लगभग हर बड़े शहर में आन्दोलन का रूप ले लिया है, जिसका प्रभाव विश्वविद्यालयों से सड़कों तक देखा जा सकता है। छात्र और शिक्षक 13 प्वाइंट रोस्टर के विरोध में और 200 प्वाइंट रोस्टर के पक्ष में हैं।

इलाहाबाद हाई कोर्ट ने 2017 में शिक्षकों की नियुक्ति एवं पदोन्नति पर फैसला दिया था और कहा था कि अब विश्वविद्यालय को एक इकाई न मानकर विभाग को इकाई माना जाये और अब से विभागवार आरक्षण दिया जाये।

इसके बाद 5 मार्च 2018 को यूनिवर्सिटी ग्रांट कमीशन ने आदेश जारी किया कि देश के सभी विश्वविद्यालयों में शिक्षकों की भर्ती के लिए इसी नियम का पालन किया जाये। इसके बाद कुछ विश्वविद्यालयों ने रिक्त पदों को भरने के लिए जब विज्ञापन निकाला तो पता चला कि अनारक्षित वर्ग के लिए बहुतायत संख्या में पद हैं, जबकि आरक्षित वर्ग के लिए बहुत कम पद हैं। इस भेदभाव और अन्याय का शिक्षकों और छात्रों ने विरोध करना शुरू कर दिया।

बढ़ते विरोध को देखते हुए सरकार ने 19 जुलाई 2018 को एक आदेश जारी करके सभी भर्तियों पर रोक लगा दी और इलाहाबाद हाई कोर्ट के फैसले को चुनौती देने के लिए सुप्रीम कोर्ट में विशिष्ट अनुमति याचिका दायर की। सुप्रीम कोर्ट ने इलाहाबाद हाई कोर्ट के फैसले को सही ठहराते हुए 22 जनवरी को इस दायर याचिका को खारिज कर दिया। तभी से मसला फिर गरमा गया।

रोस्टर क्या है? रोस्टर नियुक्ति में विभिन्न श्रेणी के उम्मीदवारों के लिए आरक्षण की एक प्रक्रिया है। 1997 से पहले विश्वविद्यालयों में शिक्षकों की नियुक्ति में कोई आरक्षण नहीं था। हालाँकि ये 1950 में ही लागू होना था। लेकिन 1997 में ही सबसे पहले एससी/एसटी के लिए आरक्षण दिया गया। इसी तरह 2007 में ओबीसी के लिए सीटें आरक्षित की गयीं, जबकि उसे 1993 में ही लागू होना था।

पहले विश्वविद्यालयों में शिक्षकों की भर्ती 200 प्वाइंट रोस्टर नियम के अनुसार होती थी, जिसमें विश्वविद्यालय को एक इकाई मानकर 50.5 प्रतिशत पद सामान्य वर्ग, 27 प्रतिशत पद ओबीसी, 15 प्रतिशत पद एससी और 7.5 प्रतिशत पद एसटी के लिए तय होता था। उदाहरण के लिए अगर किसी विश्वविद्यालय में 200 पदों की भर्ती आती है, तो 101 पद सामान्य वर्ग और 99 पद आरक्षित वर्ग का होगा।

अब आखिर 13 प्वाइंट रोस्टर क्या है, जिसको लेकर हर जगह बवाल मचा हुआ है? दरअसल इस नये नियम के अनुसार, अब विश्वविद्यालय को नहीं, बल्कि अलग-अलग विभागों को इकाई मानकर भर्ती के लिए आरक्षित पद तय किये जाते हैं। इसमें 1, 2, 3, 5, 6, 9, 10, 11 तथा 13वाँ रिक्त पद अनारक्षित होगा, जबकि 4, 8, और 12वाँ पद ओबीसी के लिए होगा, 7वाँ पद एससी और 14वाँ पद एसटी के लिए तय होगा।

उदाहरण के लिए मान लीजिए किसी विश्वविद्यालय में 15 रिक्तियाँ निकलती हैं, जिनमें 5 पद हिन्दी में, 2 पद वनस्पति विज्ञान में, 3 पद जीव विज्ञान में, 4 पद गणित में और 1 पद अंग्रेजी में हैं, तो इस नियम के हिसाब से हिन्दी में 4 सीटें सामान्य वर्ग और 1 सीट ओबीसी को, वनस्पति विज्ञान में दोनों पद सामान्य वर्ग को, जीव विज्ञान में तीनों पद सामान्य वर्ग को, गणित में तीन पद सामान्य वर्ग को और एक पद ओबीसी को तथा अंग्रेजी में एक पद सामान्य वर्ग के लिए होगा।

अब तय नियम के हिसाब से आरक्षित वर्ग को 2 सीटें और सामान्य वर्ग को 13 पद मिलेंगे। यानी आपको कानूनन भले ही आरक्षण मिला हुआ है, लेकिन नये नियम के तहत उसे आपसे छीन भी लिया जा रहा है। ऐसा कम ही होता है कि एक साथ किसी एक विभाग में 14 रिक्तियाँ निकलें और यदि निकलें भी तो नये नियम के हिसाब से सरकार की नौकरियों में एससी/एसटी-ओबीसी के लिए 49.5 प्रतिशत आरक्षण के प्रावधान का कोई मायने नहीं रह जाता। मानव संसाधन विकास मंत्रालय के "ऑल इंडिया सर्वे फॉर हायर एजुकेशन" (2017-18) के मुताबिक फिलहाल देश में कुल 40 केन्द्रीय विश्वविद्यालय हैं, जिनमें कुल 11,486 छात्र पढ़ते हैं। इनमें 1,125 प्रोफेसर हैं, जिनमें दलित प्रोफेसर 39 हैं यानी 3.47 प्रतिशत, जो आरक्षण के प्रावधान के अनुसार 15 प्रतिशत होने चाहिए। आदिवासी प्रोफेसर सिर्फ 6 यानी 0.7 प्रतिशत हैं, जो 7.5 प्रतिशत होने चाहिए। जबकि पिछड़ा वर्ग का एक भी प्रोफेसर नहीं है। जो 27 प्रतिशत होने चाहिए। सामान्य वर्ग के 1071 प्रोफेसर यानी 95.2 प्रतिशत हैं, जो 50 प्रतिशत से अधिक नहीं होने चाहिए। एसोसिएट प्रोफेसर

या असिंस्टेंट प्रोफेसर के मामले में भी स्थिति बहुत ही बदतर है।

यही कारण है कि देश के सभी विश्वविद्यालयों में आरक्षित वर्ग के शिक्षक और शोध छात्र इसका विरोध कर रहे हैं और 200 प्वाइंट रोस्टर के अनुसार भर्ती की माँग कर रहे हैं। अगर इस नियम में बदलाव नहीं किया जाता तो आरक्षित वर्ग के अध्यापकों की संख्या, जो पहले से ही बहुत कम है, आने वाले समय में और कम होती जायेगी।

विश्वविद्यालयों में आरक्षण के लिए जो लड़ाई 1997 तक लड़ी गयी और बहुत सीमित दायरे में जो आरक्षण प्राप्त हुआ, वह इस नियम के द्वारा व्यर्थ साबित होता नजर आ रहा है।

एक तरफ रोजगार-विहीन विकास के चलते रोजगार में भयानक गिरावट आयी है। हालाँकि रोजगार की भीषण समस्या आरक्षण से हल नहीं हो सकती। लेकिन आरक्षण व्यवस्था निश्चय ही समाज में पिछड़े-वंचित वर्ग को व्यवस्था में शामिल करने के लिए अनिवार्य है। 13 प्वाइंट रोस्टर भारत में सदियों से वंचित समुदाय को विश्वविद्यालयों में नियुक्ति से वंचित करने की एक कुटिल चाल है। इसीलिए देश के जागरुक, न्यायपसन्द और प्रबुद्ध लोग जातिगत भावना से ऊपर उठकर इस अन्याय के खिलाफ संघर्ष का समर्थन कर रहे हैं।

-- दिनेश मौर्या

मुजफ्फरनगर दंगे में अखबारों ने निभायी खलनायक की भूमिका

फरवरी 2019 में सरकार ने मुजफ्फरनगर दंगे के आरोपियों के मामले को रफा-दफा करने का फैसला किया। अगस्त और सितम्बर 2013 में मुजफ्फरनगर भयानक साम्प्रदायिक दंगे की चपेट में आ गया था। इसमें 60 लोग मारे गये और कई महिलाओं के साथ बलात्कार किया गया। 40 हजार से अधिक लोग अपनी जमीन से उजड़कर शरणार्थी शिविरों में पहुँच गये। दंगे की जाँच के लिए गठित एसआईटी ने 175 मामलों में आरोप पत्र दाखिल किया। पुलिस ने 6,869 लोगों को आरोपी बनाया और 1480 लोगों को गिरफ्तार किया। इनमें से 54 मामलों में गिरफ्तार 418 आरोपी पहले ही बरी हो चुके हैं। बाकियों को भी बरी करने का फैसला सरकार ने कर लिया है।

दंगा किस बात को लेकर शुरू हुआ था, इसके बारे में कई कहानियाँ प्रचलित हैं। लेकिन अदालत के उस फैसले से बात साफ हो जाती है, जिसमें मुजफ्फरनगर दंगे में अखबार खलनायक बन गये।

मुजफ्फरनगर दंगे की वजह बनी तीन हत्याओं में से दो हत्याओं के आरोपियों को हाल ही में अदालत ने उम्रकैद की सजा सुनायी। जिस अन्तिम चार्जशीट के आधार पर फैसला दिया गया है, उसमें बताया गया है कि विवाद की शुरुआत मोटरसाइकिलों के टकराने से हुई थी। जबकि दंगे के दौरान अखबारों और सोशल मीडिया द्वारा इस बात को फैलाया गया कि विवाद की वजह मुस्लिम लड़के द्वारा जाट समाज की लड़की से की गयी छेड़छाड़ है। जब नेताओं ने अखबारों के इस झूठ में नफरत घोलकर लोगों को पिलाना शुरू किया, तो इसका नतीजा यह हुआ कि छियासठ लोग दंगे की भेंट चढ़ गये और चालीस हजार से ज्यादा लोग अपनी जड़ों से उजड़कर विस्थापित हुए। वह इलाका, जिसकी हिन्दू-मुस्लिम एकता की मिसाल दी जाती थी, टूटकर बिखर गया। पूरा देश हिन्दू और मुस्लिम के दो धड़ों में बँट गया।

इस दंगे का सबसे ज्यादा फायदा भारतीय जनता पार्टी को मिला, जो दंगे के आठ महीने बाद हुए लोकसभा चुनाव में बहुमत से सत्ता में आयी। सबसे अधिक नुकसान किसानों को हुआ। किसानों के फसल बकाया भुगतान और अन्य समस्याओं के लिए लड़ाई लड़ने वाला 'भारतीय किसान यूनियन' नामक संगठन, जो हिन्दू-मुस्लिम भाईचारे की मिसाल रह चुका था, टूटकर बिखर गया और उसके नेता खुलेआम साम्प्रदायिक भाषण देते नजर आये। नतीजतन फसल के बकाया भुगतान की समस्या विकराल रूप धारण कर गयी और किसान की बात उठाने वाला कोई संगठन नहीं रहा। फिलहाल अगले लोकसभा चुनाव की जमीन तैयार करने के लिए उत्तर प्रदेश सरकार ने दंगे के अट्ठारह आरोपियों के मुकदमे वापस ले लिये हैं। उन आरोपियों को बिना अदालती कार्रवाई के आरोपों से बरी कर देना तो उनके हौंसलों को बढ़ाने वाला ही है।

जिन अखबारों के चलते दंगा प्रभावित इलाके के लोगों का सदियों का भाईचारा नष्ट हुआ, आज जब उनके झूठ का पर्दाफाश हुआ है, तो उनसे सवाल करने वालों का अभाव है। यही वजह है कि उनके हौंसले बुलन्द हैं और वे रोजाना सैकड़ों झूठ लोगों के दिमाग में भर रहे हैं। इस दंगे ने लोगों के बीच अविश्वास और नफरत की इतनी चौड़ी खाई पैदा कर दी है, जिसे भरने में आने वाली पीढ़ियों की कमर टूट जायेगी। इसलिए सरकार को इन अखबारों पर प्रतिबन्ध लगा देना चाहिए।

-- विशाल

कोयला खदान मजदूरों की जद्दोजहद

दिसम्बर 2018 में मेघालय की एक 370 फीट गहरी संकरी कोयला खदान में 15 मजदूर फँस गये। उन्हें बचाने के लिए चले बचाव अभियान ने पूरे देश का ध्यान अपनी ओर खींच लिया। इस बचाव अभियान के दौरान आधुनिक उपकरणों के अभाव से जूझती राहत और बचाव एजेंसियों की बेबशी तथा जानलेवा खदानों से कोयला निकालने वाले मजदूरों की जिन्दगी की असलियत का पता चला।

मजदूरों की कब्रगाह बनीं इन 300 से 400 फीट लम्बी खदानों में मजदूर लेटकर घुसते हैं और कोयला निकालते हैं। 13 दिसम्बर को 15 मजदूर पूर्वी जयन्तिया हिल्स जिले के शान गाँव के पास एक संकरी गुफा के अन्दर कोयला निकालने के लिए गये थे। लेकिन खदान के अन्दर पानी भर जाने के कारण उसी में फँस गये। किसी तरह एक मजदूर खदान से बाहर निकलने में सफल रहा। उसने बाकी मजदूरों के गुफा में फँसे होने की सूचना स्थानीय लोगों को दी। सरकारी बचाव एजेंसियों की लापरवाही और उपकरणों की भारी कमी के चलते बाकी के सभी मजदूर इस गुफानुमा खदान में ही दफ्न हो गये। उनके घरवाले आज भी उनकी लाश मिलने की आशा बाँधे हुए हैं।

मेघालय में कोयला खदानों में मजदूरों के जिन्दा दफ्न होने की यह पहली घटना नहीं है। इससे पहले भी 1992 में दक्षिण गारो हिल्स में एक संकरी गुफा में फँसकर 30 मजदूर अपनी जान गवाँ चुके थे तथा 2012 में भी 15 मजदूर गारो हिल्स में ऐसे ही हादसे का शिकार हुए थे।

इन खदानों में काम करने वाले मजदूरों में राज्य सरकार द्वारा अपनी जमीनों से खदेड़े गये आदिवासी तथा दो जून की रोटी की तलाश में दूसरे राज्यों से आये प्रवासी मजदूर हैं।

यहाँ कोयला खदान मालिकों द्वारा कोयला निकालने के लिए प्राचीन बर्बर तरीके का इस्तेमाल किया जाता है। अधिक कोयला निकालने के लालच में खदान मालिक मजदूरों को कोयला खदान में धकेल देते हैं, जहाँ मजदूर अक्सर दुर्घटनाओं का शिकार होते हैं।

स्थानीय मजदूर आन्दोलन और सामाजिक संगठन के दबाव के चलते 2014 में नेशलन ग्रीन ट्रिब्यूनल ने इन खदानों पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। लेकिन इसके बावजूद भी अवैध रूप से इन कोयला खदानों से कोयले का खनन जारी है। स्पष्ट है कि कोयला खदान माफियाओं और राजनेताओं की साँठ-गाँठ के बिना यह सम्भव नहीं हो सकता।

मेघालय में 'रैट होल' (चूहा बिल) के नाम से चर्चित इन कोयला खदानों की संख्या लगभग 5 हजार है। इन खदानों के अधिकांश मालिक राजनीति पर अपनी पकड़ बनाये हुए हैं। मेघालय के विधानसभा चुनाव में 30 प्रतिशत उम्मीदवार ऐसे थे, जो इन कोयला खदानों के मालिक थे या कोयला परिवहन व्यवसाय से जुड़े हुए थे। इनमें से कुछ विजयी होकर विभिन्न मंत्रालयों में उच्च पदों पर आसीन हैं। हर पार्टी में ही ऐसे नेताओं व माफियाओं की भरमार है। यही वजह है कि नेशनल ट्रिब्यूनल द्वारा इन कोयला खदानों पर प्रतिबन्ध लगाने के बावजूद तत्कालीन कांग्रेस सरकार ने भी इस प्रतिबन्ध के खिलाफ सुप्रीम कोर्ट में अपील दायर की थी। राज्य में मौजूदा सत्तासीन नेशनल पीपुल्स पार्टी सह-भाजपा गठबन्धन की सरकार ने भी सत्ता सम्भालते ही कोयला खदानों पर प्रतिबन्ध हटाने की पैरवी सुप्रीम कोर्ट में की।

राज्य में कोयले का अवैध खनन करने वाले माफियाओं की पहुँच थाने से लेकर सत्ता तक है। इसका खुलासा बराक घाटी से पकड़े गये एक कोयला माफिया की डायरी से हुआ है। उसकी डायरी में बड़े नेताओं, विधायकों, प्रशासनिक अधिकारियों और पुलिस अधिकारियों के नाम दर्ज थे। ये सभी किसी न किसी रूप में इस अवैध खनन के कारोबार में संलिप्त थे।

पिछले तीन वर्षों में देशभर में कोयला, खनिज और तेल की खदानों में जिन्दा दफ्न होने वाले मजदूरों की संख्या 377 तक पहुँच चुकी है। ये वे मामले हैं, जो स्थानीय मजदूरों एवं सामाजिक संगठनों के चलते सामने आये हैं, वरना फिल्मी सितारों की शादी-बारात, बच्चों के हगने-मूतने की खबर रखने वाले मीडिया में न इनकी कोई खबर मिलती है और न ही ये स्थानीय प्रशासन की कारगुजारी के कारण दर्ज हो पाती हैं।

थाईलैंड की एक गुफा में फँसे थाईलैंड के 12 खिलाड़ियों को निकालने के लिए मदद भेजकर वाहवाही लूटने वाली भारत की केन्द्र सरकार अपने देश के गुफानुमा खदानों में फँसे इन मजदूरों की जिन्दगी बचाने में नाकाम रही। अगर सरकार ने अरबों-खरबों रुपये मूर्तियों पर खर्चने के बजाय मजदूरों को खनन माफियाओं के चंगुल से आजाद कराने और उनके लिए रोजगार के सृजन में लगाया होता तो आज 15 नौजवान अपने परिवार के साथ होते।

-- सतेन्द्र

भारतीय खुदरा बाजार को गिरफ्त में लेती ई-मार्केटिंग कम्पनियाँ

भारत में ऑन लाइन व्यापार करने वाली कम्पनियों की संख्या में तेजी से बढ़ोतरी हो रही है। इस क्षेत्र की मुख्य कम्पनियाँ फ्लिपकार्ट, अमेजन, इवे, वालमार्ट, स्नैपडील, जोमैटो, स्वीगी, अलीबाबा, आदि हैं। इन कम्पनियों का मुख्य उद्देश्य भारत के खुदरा बाजार पर कब्जा जमाना है। सरकार द्वारा प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) को 100 प्रतिशत अनुमति दिये जाने के चलते इस क्षेत्र में विदेशी पूँजी के लिए रास्ता सुगम हो गया है। इस कारोबार में भारतीय पूँजीपति उनके सहयोगी की भूमिका में हैं।

भारत में इण्टरनेट उपभोक्ताओं की संख्या बढ़ने के साथ इन कम्पनियों के कारोबार में बढ़ोतरी हुई है। भारत के खुदरा व्यापार में इन कम्पनियों की हिस्सेदारी 180 अरब रुपये की है, जबकि खुदरा व्यापार का कुल कारोबार 300 अरब रुपये का ही है। रिर्पोटों के मुताबिक बाजार में ऑनलाइन कम्पनियों की हिस्सेदारी में और बढ़ोतरी होगी।

इन कम्पनियों के कारोबार के लिए अभी तक सरकार की तरफ से कोई स्पष्ट कानून या दिशा-निर्देश नहीं है। इस व्यापार से जुड़ी अनेक कम्पनियाँ ऐसे देशो में रजिस्टर्ड है, जिन्हें टैक्स हैवन कहा जाता है। इसके चलते ये कम्पनियाँ एक्साइज, सेल टैक्स सर्विस टैक्स और इनकम टैक्स नहीं चुकातीं। ये भारी मात्रा में सस्ता सामान सीधे उत्पादकों से खरीदती हैं और सीधे उपभोक्ता को बेच देती हैं। इससे बीच के दुकानदार, आपूर्तिकर्ता और ट्रांसपोर्ट आदि से जुड़े लोगों का रोजगार छिन जाता है और इनकी सारी कमाई इकट्ठी होकर ऑनलाइन कम्पनियों की जेब में चली जाती है। मीडिया की खबरों के मुताबिक 30 अरब डॉलर के वैश्विक कॉफी बाजार में उत्पादकों को पहले 10 अरब डॉलर की कमाई होती थी। अब कॉफी का विश्व बाजार 60 अरब डॉलर हो गया है, जबकि कॉफी उत्पादकों की कमाई में 6 अरब डॉलर की कमी आयी है। जायज सी बात है कि बाजार पर एकाधिकार के चलते ये कम्पनियाँ उत्पादकों (उद्यमियों और किसानों) को अपना अपना माल कम दामों पर बेचने के लिए मजबूर करती हैं। माल का दाम सस्ता रखने के लिए उत्पादक मजदूरों का शोषण बढ़ा देता है।

ये अपनी बिक्री का 70 प्रतिशत हिस्सा किसी भी देश से खरीदने के लिए आजाद होती हैं, जबकि 30 प्रतिशत हिस्सा उसी देश से खरीदेंगी, जिस देश में माल बेचती हैं।

देश के खुदरा व्यापार में 5 करोड़ लोगों को रोजगार मिला हुआ है और लगभग 4.25 करोड़ लघु तथा मध्यम उद्योगों में 10. 6 करोड़ लोगों को रोजगार मिला हुआ है। ये लघु और मध्यम उद्योग सरकारी या निजी बैंको से कर्ज लेकर अपना कारोबार करते है। सरकार द्वारा वालमार्ट, अमेजन फ्लिपकार्ट जैसी कम्पनियों को भारतीय बाजार में छूट देने के कारण इन व्यापारियों के कारोबार में गिरावट आयी है, जिससे मजदूरों की छँटनी भी बढ़ गयी है।

अगस्त 2018 में खुदरा व्यापार की अमरीका की दैत्याकार कम्पनी वालमार्ट ने 1119 अरब रुपये में फ्लिपकार्ट के 77 प्रतिशत शेयर खरीद लिये। फ्लिपकार्ट का मालिकाना वालमार्ट के पास है जो दुनिया की सबसे बड़ी खुदरा कम्पनी है। 15 देशों में स्थिति वालमार्ट के 85 सौ स्टोर में महज 20.2 लाख लोगों को रोजगार मिलता है जबकि 2018 में वालमार्ट की कुल कमाई 35 अरब रुपये और कुल मुनाफा लगभग 8.88 अरब रुपये था। वालमार्ट भारत के 9 राज्यों में 50 नये स्टोर खोल रही है। जिसमें सिर्फ 13,100 लोगों को ही रोजगार मिलेगा। फ्लिपकार्ट के अधिग्रहण के बाद वालमार्ट को ऑनलाइन व्यापार में एक बड़ा बाजार हाथ लग गया है।

ऑनलाइन कम्पनियाँ स्थायी कर्मचारियों की भर्ती कम करती हैं। वे ज्यादातर ठेके पर कर्मचारी रखती हैं। कम्पनी ठेके पर रखे कर्मचारियों के स्वास्थ्य और सुरक्षा की जिम्मेदारी नहीं लेती। ग्राहक को सामान पहुँचाने वाले कर्मचारी के पास अपना स्मार्टफोन और मोटरसाइकिल पहले से होनी चाहिए। सामान पहुँचाने में लगे पेट्रोल का खर्च खुद कर्मचारी को वहन करना पड़ता है। यदि सामान पहुँचाते समय सामान में कोई खराबी आ जाये तो कर्मचारी का वेतन काट लिया जाता है।

ऑनलाइन कम्पनियाँ ग्राहक को होम डिलवरी की सुविधा देती हैं। जिसमें ग्राहक विक्रेता से नहीं मिलता। ग्राहक का सम्पर्क सीधे डिलीवरी ब्वाय से होता है। ग्राहक की असन्तुष्टि का सामना उसी को करना पड़ता है। यदि ग्राहक शिकायत दर्ज करता है तो कर्मचारी को कम्पनी मानसिक और आर्थिक रूप से परेशान करती है। ग्राहक जितनी बार सामान वापिस करता है, उसके ट्रांसपोर्ट का खर्च उस डिलीवरी ब्वाय को उठाना पड़ता है। कम्पनी सिर्फ एक बार खर्च वहन करती है। सामान पहुँचाते समय कोई दुर्घटना होने पर कम्पनी कोई जिम्मेदारी नहीं लेती।

ये कम्पनियाँ अपने ग्राहकों तक पहुँच बढ़ाने के लिए प्रलोभन देती हैं जिससे ग्राहक खुद ही कम्पनी के एजेन्ट का काम करना शुरु कर देते है। ये कम्पनियाँ ग्राहकों द्वारा इण्टरनेट सर्फिंग की निजी सूचनाओं को इक्ट्ठा करती हैं। एक निश्चित समय अवधि के बाद ग्राहक से उनका आधार कार्ड, पेन कार्ड और बचत खाते की जानकारी लेती हैं। इस जानकारी का उपयोग कम्पनियाँ अपने हिसाब से अपने फायदे के लिए करती हैं। अधिक लाभ कमाने के लिए ये जानकारियाँ दूसरी कम्पनियों को बेच देती हैं।

ये कम्पनियाँ अपना खर्च कम करने के लिए कई शहरों में गोदाम बनवा रही हैं जिसमें उपभोक्ताओं की जरूरत के हिसाब से सामान भरे जायेंगे। 20 से 30 किलोमीटर के दायरे के ग्राहकों को 2 से 3 व्यक्तियों के माध्यम से सभी उपभोग की वस्तुए उपलब्ध करायी जायेंगी। जायज सी बात है कि इससे उस शहर में खुदरा व्यापार में और गिरावट आयेगी तथा छोटे दुकानदारों के उजड़ने की प्रक्रिया और तेज हो जायेगी। इसका साफ अर्थ है कि बेरोजगार लोगों की संख्या तेजी से बढ़ेगी।

भारत में ऑनलाइन व्यापार करने वाली कम्पनियों की सबसे बड़ी समस्या पेमेन्ट को लेकर आती है। ये कम्पनियाँ पैसे के मामले में कर्मचारियों पर विश्वास नहीं करती हैं। कम्पनी उपभोक्ताओं से ऑनलाइन पेमेन्ट करने का दबाव बनाती हैं जिसके लिए उपभोक्ताओं को विभिन्न तरह के प्रलोभन दिये जाते हैं। शुरु में ऑनलाइन पेमेन्ट पर ये कम्पनियाँ उपभोक्ता को 20 से 50 रुपये प्रलोभन राशि देती हैं। लेकिन एक अवधि के बाद पेमेन्ट करने का पैसा वसूल करने लगती हैं। उपभोक्ता द्वारा ऑनलाइन पेमेन्ट करने पर बैंक भी हर माह अपना चार्ज काटता है। इन कम्पनियों का दायरा बढ़ाने के लिए 4जी जीयो जैसी सस्ती इण्टरनेट की सुविधा को करोड़ों लोगों तक पहुँचाया गया।

सरकार द्वारा उठाये गये नोटबन्दी और जीएसटी जैसे कदमों ने छोटे व्यापारियों, कर्मचारियों और मजदूरों की कमर तोड़ कर इन कम्पनियों को ही फायदा पहुँचाया है।

-- प्रशान्त कुमार

चिकित्सा उपकरण कम्पनियों की लूटपाट

चिकित्सा उपकरणों के बाजार में कमाई की दरिया बह रही है। लेकिन यह कमाई गड़बड़ी वाले उपकरणों की खरीद-बिक्री के जरिये हासिल की जा रही है। कई बार मरीजों और उनके परिजनों को जानकारी दिये बिना ही तकनीकी गड़बड़ी वाले उपकरण लगा दिये जाते हैं। निजी क्लीनिकों और अस्पतालों में उपयोग किये जाने वाले आधे से अधिक पुराने चिकित्सा उपकरण आयात किये जाते हैं। इनका सटीकता और सुरक्षा के स्तर पर कोई आकलन नहीं किया जाता है। जिन उपकरणों का इस्तेमाल किया जा रहा है, उनमें से कई दुनियाभर में प्रतिबन्धित कर दिये गये हैं। एक ही उत्पाद का नाम, क्वालिटी और कीमत अलग-अलग देशों में अलग-अलग है। चिकित्सा उपकरणों के मामले में कहीं कोई आम सहमति नहीं है कि कौन सा उपकरण मरीज के लिए सुरक्षित है और कौन सा नहीं। इस मामले में न तो कहीं कोई चेतावनी प्रणाली है और न ही कोई नियामक संस्था। इन उपकरणों को बनाने वाली कम्पनियाँ उपकरणों की डिजायन तैयार करती हैं और उनकी आयु का फैसला खुद ही करती हैं। लेकिन वे इनकी कमियों को छुपा लेती हैं, जिसकी कीमत भोले-भाले लोगों को चुकानी पड़ती है। कई बार तो तकनीकी खामियों वाले उपकरणों के प्रत्यारोपण से मरीजों की मौत हो जाती है। पिछले एक दशक के दौरान पूरी दुनिया में 82 हजार लोगों की मौत हो चुकी है और 17 लाख मरीज घायल हो चुके हैं। धन के अभाव में भी कुछ लोग अपने जीवन की पूरी जमा पूँजी इलाज में इसलिए खर्च कर देते हैं कि वे ठीक हो जायेंगे। लेकिन ये कम्पनियाँ डॉक्टरों के साथ मिलकर सारा पैसा लूट लेती हैं और बदले में दे देती हैं जीवनभर की अपंगता।

चिकित्सा उपकरणों की धाँधली एक ऐसी समस्या है, जो पूरी स्वास्थ्य व्यवस्था पर सवाल खड़ा करती है। यह चिकित्सा उपकरण बनाने वाली कम्पनियों को कटघरे में खड़ा करती है। दुनिया में चिकित्सा उपकरणों को बेचने का एक बड़ा अनियंत्रित चिकित्सा बाजार है। भारत में चिकित्सा उपकरणों का बाजार 35 हजार करोड़ रुपये का है, जिसको 2025 तक 50 लाख करोड़ रुपये तक लाने की योजना है। भारत के चिकित्सा उपकरणों का उद्योग एशिया में चौथे स्थान पर है। इसमें पहले स्थान पर जापान, दूसरे स्थान पर चीन और तीसरे स्थान पर दक्षिण कोरिया है।

ज्यादातर चिकित्सा उपकरण बनाने वाली कम्पनियाँ अमरीका

की हैं, जिनमें से जॉन्सन एंड जॉन्सन, मेडट्रानिक, स्ट्राइकर, एवट और वायर मुख्य हैं। ये कम्पनियाँ दुनियाभर के देशों में चिकित्सा उपकरणों को बेचने का कारोबार करती हैं और अकूत मुनाफा कमाती हैं। स्ट्राइकर इंडिया के दिल्ली, एनसीआर, मुम्बई, चेन्नयी और कोलकाता में कार्यालय हैं। इस कम्पनी का 2017-18 का वार्षिक कारोबार 30 करोड़ रुपये था। स्ट्राइकर इंडिया का मुनाफा मुख्यतः घुटना प्रत्यारोपण और न्यूरो सर्जरी के लिए चिकित्सा उपकरणों की बिक्री से होता है।

ये कम्पनियाँ गुणवत्ताहीन उपकरणों को बाजार में बिना रोक-टोक बेच रही हैं। इनमें से अधिकतर उपकरण कोरोनरी स्टेंड, पेसमेकर, ब्रेस्ट, कूल्हों और घुटनों से सम्बन्धित हैं। ये सभी कम्पनियाँ बड़े-बड़े डॉक्टरों को पैसा देकर अपने उपकरणों को प्रोत्साहित कराती हैं। इन कम्पनियों ने भारत में ही नहीं पूरी दुनिया में दलालों का जाल बिछा रखा है। इस लूट के तंत्र में ना केबल छोटे डॉक्टर बल्कि बड़े-बड़े कॉरपोरेट अस्पताल और सरकारी अस्पतालों के डॉक्टर भी सामिल है। इन बिचौलियों और भारी कमीशन की वजह से स्टेंट और पेसमेकर की कीमत मरीज तक पहुँचने पर मूल कीमत से कई गुना ज्यादा हो जाती है। ये कम्पनियाँ दोषपूर्ण उपकरणों को बेचने के लिए सभी नियमों की न सिर्फ अनदेखी करती हैं बल्कि इन्हें तोडती भी है। हाल ही में अमरीका के शीर्ष वित्तीय नियामक प्रतिभीति और विनिमय आयोग (एमईसी) ने दुनिया की अग्रणी हड्डियों में प्रत्यारोपित करने वाले उपकरणों का निर्माण करने वाली कम्पनी स्ट्राइकर पर नियमों का उल्लंघन करने के लिए लगभग पचपन करोड़ से अधिक का जुर्माना लगाया था। इस कम्पनी ने भारत, चीन और कुबैत में नियमों का उल्लंघन किया था।

ये कम्पनियाँ सरकारी और निजी अस्पतालों के डॉक्टरों से सांठगांठ करके खरीदे गये उपकरणों के बिलों में न सिर्फ हेरा-फेरी करती हैं बल्कि दोषपूर्ण और अनावश्यक उपकरणों को भी बेचती हैं और भारी मुनाफा कमाती है। ऐसी ही एक हेरा-फेरी साल 2012 में एम्स और सफदरजंग अस्पताल दिल्ली में उपकरण बेचने के लिए की गयी जिसमें निविदाओं में तीन करोड़ की हेरा-फेरी की गयी थी। इसमें स्ट्राइकर के अलावा दो अन्य फार्मा कम्पनियाँ भी शामिल थी।

इन कम्पनियों के द्वारा बनाये गये उपकरणों की गुणवत्ता और कीमत की कोई जाँच नहीं की जाती और न ही इस बात की जाँच की जाती की ये उपकरण शरीर में जाकर ठीक से काम करेंगे या नहीं। इस प्रकार के उपकरण अधिकतर निजी अस्पतालों में प्रयोग किये जाते हैं। मरीजों को विज्ञापनों के माध्यम से सस्ते इलाज का झांसा देकर फसाया जाता है। ये अस्पताल गरीब लोगों को इलाज के लिए लोन भी दिलाते हैं। भोलेभाले लोग लोंन के जाल में फंस जाते हैं सस्ते उपकरण महंगे दामों में उन्हें लगाये जाते हैं। बाद में जब मरीजों को दक्कत होती है तब उन्हें दोबारा सर्जरी के लिए बोला जाता है। जो लोग दूसरी सर्जरी का खर्च उठा सकते हैं वो दूसरी सर्जरी करा लेते हैं। बाकी लोगों की हालत पहली सर्जरी की किस्त चुकाने की भी नहीं होती। इस सब में अस्पतालों और उपकरण बनाने वाली कम्पनियों को दोहरा फायदा होता है। पहला फायदा रोगियों को सस्ते उपकरणों को महंगे दामों पर बेचकर होता है। दूसरा फायदा लोन और बीमा कम्पनियों के द्वारा होता है।

देश में चिकित्सीय उपकरणों की गुणवत्ता और जाँच पर कभी ध्यान नहीं दिया गया। बारह साल पहले पहली बार इससे सम्बन्धित कानून का मसौदा तैयार किया गया था, लेकिन उसे लागू नहीं किया गया। सरकार ने अब तक इस पर निगरानी या नियमन की दिशा में कोई पहल नहीं की है। सबसे बड़ी विडम्बना तो यह है कि किसी उपकरण की तकनीकी खामियों के चलते मरीज को नुकसान होने की स्थिति में सरकार के पास सम्बन्धित दवा कम्पनी को मुआवजे का निर्देश देने का न तो कोई अधिकार है और न ही इसके लिए अब तक कोई कानून बनाया जा सका है। चिकित्सा उपकरणों की खरीद और बिक्री में एक संगठित गिरोह काम कर रहा है। कीमतों का नियमन और निगरानी करने के लिए कोई ठोस कानून न होने की वजह से निर्माता कम्पनियाँ और निजी अस्पताल बीमा कम्पनियों और लोन देने वाली कम्पनियों के साथ मिलकर भोली-भाली जनता को लूट रहे हैं और अपनी तिजोरियाँ भर रहे हैं।

-- सन्देश

मेरे खयाल से संघर्ष करना जायज है। अगर लोग उत्पीड़ित हैं तो उनको संघर्ष क्यों नहीं करना चाहिए? (दुनियाभर के लोगों को एक दूसरे से प्यार करने का उपदेश देना पाखण्ड है।)

... भरपेट खाया व्यक्ति बहुत सम्भव है कि भूख से मरते लोगों को प्यार करे, लेकिन भूखा मरता व्यक्ति भरपेट खाये व्यक्ति से कभी प्यार करेगा क्या?

--लू शुन

पेंशन बहाली का तेज होता आन्दोलन

पिछले चौदह वर्षों से चल रहे पुरानी पेंशन बहाली का आन्दोलन तेज होता जा रहा है। 6-12 फरवरी तक देश के कई राज्यों के कर्मचारी बड़ी संख्या में हड़ताल पर चले गये। दिल्ली के रामलीला मैदान में करीब दो लाख कर्मचारियों ने हड़ताल की, जिसमें अलग-अलग विभागों के सरकारी कर्मचारी शामिल थे। 2004 में एक नयी पेंशन स्कीम लागू की गयी थी। लेकिन कर्मचारियों का कहना है कि नेशनल पेंशन स्कीम (एनपीएस) कर्मचारियों के हित में नहीं है। उनकी माँग है कि सरकार पुरानी पेंशन स्कीम को ही सभी सरकारी कर्मचारियों पर लागू करें।

1 जनवरी 2004 को सरकार ने पुरानी पेंशन स्कीम की जगह एक नयी पेंशन स्कीम शुरू की, जिसका नाम एनपीएस है। इसे 2009 में सभी निजी और सरकारी कर्मचारियों के लिए शुरू कर दिया गया और सरकारी कर्मचारियों के लिए इसे अनिवार्य कर दिया गया। एनपीएस एक तरह का बचत खाता है, जिसमें धारक अपने वेतन का अधिकतम 10 प्रतिशत और न्यूतम 5 प्रतिशत हिस्सा 60 साल की उम्र (सेवानिवृत्ति) तक जमा करेगा। साथ ही उसे इन पैसों को निवेश के लिए तीन विकल्प दिये जाएँगे। वे अपनी जमा राशि को सरकारी बॉण्ड्स, निजी बॉण्ड्स या सिटिजन मॉडल में निवेश कर सकते हैं। सरकारी बॉण्ड्स में केवल 15 प्रतिशत तक ही निवेश करने की अनुमति है।

पेंशन निकासी योजना भी बहुत विशेष है। 60 की उम्र में व्यक्ति अपनी जमा राशि का 60 प्रतिशत ही एक मुश्त निकाल सकता है। बाकी 40 प्रतिशत में धारक को कोई वार्षिक प्लान खरीदना होगा। अगर 60 की उम्र से पहले धारक पैसा निकालेगा तो बाद में उसे जमा राशि के 80 प्रतिशत से वार्षिकी खरीदनी पड़ेगी। बचे हुए 20 प्रतिशत को ही एक मुश्त निकाल सकता है। इसमें धारक को कोई कर्ज आदि की व्यवस्था भी नहीं दी जाएगी और अन्त में आपका रिर्टन शेयर मार्केट पर निर्भर करेगा। मतलब रिर्टन की कोई गारंटी नहीं है। वो इस बात पर निर्भर करेगा कि आपने पैसा किन क्षेत्रों में निवेश किया है और उनकी मार्केट अप है या डाऊन। अब कर्मचारियों से यह छिपी बात नहीं रह गयी है कि यह सब उनकी पेंशन को लूट खाने का धंधा है।

इसे एक उदाहरण से आसानी से समझा जा सकता है। माना कोई धारक 60 की उम्र तक एक लाख रूपये जमा करता है। उसके बाद वह एक लाख का 60 प्रतिशत यानी 60,000 रुपये एक मुश्त निकाल सकता है। बाकी 40 हजार रूपये से उसको कोई वार्षिकी खरीदने के लिए किसी बीमा कम्पनी के पास जाना होगा। इसके बाद बीमा कम्पनी वार्षिक ब्याज दर के हिसाब से पैसा रिर्टन करेगी। माना 10 प्रतिशत ब्याज दर चल रही है, तो उसकी पेंशन मात्र 4000 रुपये वार्षिक होगी। जबकि पुरानी पेंशन स्कीम में सरकारी कर्मचारी के अन्तिम माह के वेतन का 50 प्रतिशत पेंशन के रूप में दिया जाता था। साथ ही महँगाई भत्ता, चिकित्सा भत्ता भी शामिल था और उम्र बढ़ने पर पेंशन में वृद्धि कर दी जाती थी और वेतन आयोग लगने पर भी पेंशन में वृद्धि होती थी।

लेकिन सरकार का कहना है कि सरकारी खर्च बढ़ने के चलते अब सरकार पुरानी स्कीम के तहत पेंशन नहीं दे सकती। एक तरफ तो सरकार विधायक, मंत्रियों आदि का वेतन बढ़ाकर उन्हें उसी पुरानी पेंशन के तहत रूपये बाँट रही है। बड़ी-बड़ी कम्पनियों को टैक्स में भारी छूट दे रही है। अपने चुनाव प्रचार में लाखों-करोड़ों रूपया पानी की तरह बहा रही है। लेकिन पेंशन के लिए सरकार के पास पैसा नहीं है।

सच तो ये है कि एनपीएस के तहत सरकार अपने चहेते पूँजीपतियों और संकट में डूबी बीमा कम्पनियों को फायदा पहुँचा रही है। साफ है कि आज बीमा कम्पनियों का दिवाला निकला पड़ा है। बैंक नकदी के संकट से जूझ रहे हैं। बाजार मंदी का शिकार है। भारत के बाजार में कोई निवेश करने को तैयार नहीं है। इसीलिए सरकार ने इस बीमारी की मरहमपट्टी कर्मचारियों के पैसे छीनकर करने की ठान ली है। एनपीएस के नियम-शर्तें ऐसी हैं कि जिनको पूरा कर पाना मुश्किल है, जिससे बाद में पैसा सही सलामत मिलने की उम्मीद कम ही है।

कैग की आडिट रिर्पोट में यह तथ्य सामने आया है कि 2005-2008 तक एनपीएस में कितनी राशि जमा हुई थी, इसका कोई ब्यौरा सरकार के पास नहीं है। जिस अवधि का हिसाब है, उसमें भी सरकारी अंशदान नहीं पहुँचा और वित्तीय वर्ष 2016-17 में एनपीएस की राशि एक तिहाई से भी कम हो गयी। बची हुई राशि का क्या हुआ, इसका जवाब आडिटर के पास भी नहीं है। 31 मार्च 2017 को यह जानकारी प्रधान महालेखाकार सरिताजफा ने एक प्रेसवार्ता के दौरान समाप्त हुए वित्तीय वर्ष की रिपोर्ट में दी। इन बातों से साफ जाहिर होता है कि एनपीएस की हकीकत क्या है? कर्मचारियों का पैसा, जिसे वे यह सोचकर जमा करते हैं कि बुढ़ापे में इसके सहारे जिन्दगी गुजार लेंगे, कितने सुरक्षित हाथो में है?

--मोहित वर्मा

पीएम की हर जनसम्पर्क कार्रवाई पहले से तय होती है।

(दक्षिण भारतीय मित्र विकनेश ने यह पोस्ट 24 दिसम्बर 2018 को लिखी थी उन्होंने इस पोस्ट में अपने कॉलेज की एक घटना को साझा किया है जिससे पता चलता है कि किस तरह मोदी सरकार अपनी जनसम्पर्क कार्यसूची चलाती है, जिसकी हर कार्रवाई पहले से तय होती है। मूल पोस्ट इंग्लिश में थी जिसको मैं हिन्दी में पोस्ट कर रहा हूँ।)

-- गिरिश मालवीय

हम देखते हैं कि हमारे प्रधानमंत्री अचानक पूछे जाने वाले प्रश्नों का जवाब देने में असमर्थ हैं।

मैं अपना उदाहरण आपके सामने रखता हूँ। हम हैकथॉन के समापन समारोह के लिए अहमदाबाद में थे। लंच के बाद हमें बताया गया कि प्रधानमंत्री वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से छात्रों को सम्बोधित करेंगे। मुझे लगा कि वह छात्रों से सीधे सवाल करेंगे। लेकिन मैं गलत था।

वास्तविक कार्यक्रम से चार घण्टा पहले कुछ अधिकारी आये और हमारे कार्यक्रम को कुछ समय के लिए रोकने के लिए कहा। उन्होंने हर टीम में जाना शुरू किया और पूछा कि क्या किसी को प्रधानमंत्री जी से कोई सवाल है और चूँकि हम दक्षिण भारत से थे इसलिए उन्होंने विशेष रूप से हमारी टीम को निशाना बनाया और हमसे पूछा कि क्या कोई हिन्दी जानता है

हमारी टीम में एकमात्र हिन्दी भाषी व्यक्ति 'अग्रवाल' था, इस कारण उन्हें निराशा हुई। उन्होंने इस विचार को त्याग दिया। (शायद कोई दक्षिण भारतीय मिलता और हिन्दी में तारीफ करता तो ज्यादा असर पड़ता।)

क्त शुरू होने से 3 घंटे पहले छात्रों के बैठने के क्रम को अधिकारियों ने बदल दिया और हमें 'रिहर्सल' के लिए बैठने के लिए कहा गया। (इस बात की रिहर्सल कि प्रधानमंत्री से कैसे सवाल पूछे जाएँ?)

उसके बाद सभी टीमों में से तीन लड़कियों और दो लड़कों का चयन किया गया और उन्हें आगे की पंक्ति में लाया गया। फिर हर छात्र को पूछने के लिए एक पहले से तय प्रश्न दिया गया और यह भी बताया गया था कि प्रधानमंत्री जी के जवाब देने के बाद आपको कैसी प्रतिक्रया देनी हैं।

यहाँ तक कि उन्होंने प्रधानमंत्री के साथ फॉलो अप वाले सवाल-जवाब भी तय किये और ये भी बताया कि प्रसारण के दौरान कब और कैसा हँसी-मजाक करना है।

कमाल यह था कि प्रधानमंत्री के आने से एक घंटा पहले ही वीडियो कॉन्फ्रेंस शुरू कर दी गयी। हमें बतख की तरह बैठे हुए तीन घण्टे से अधिक वक्त हो गया था लेकिन भाड़े से लाये कुछ लोग 'मोदी मोदी मोदी' के नारे लगा रहे थे। हम निराश हो चले थे।

तभी अचानक एक चालीस साल के अंकल मंच पर प्रकट हुए और उन्होंने कहा कि आप मुझे प्रधानमंत्री मान कर अपना आखिरी रिहर्सल कर सकते हैं।

इसके बाद हमें अपने मोबाइल फोन बन्द करने को कहा गया। मैंने अपने जीवन के सबसे महत्त्वपूर्ण दृश्यों को देखा। इन चालीस साल के अंकल ने प्रधानमंत्री की पूरी तरह से मिमिक्री करनी शुरू कर दी। उन्होंने पहले से तैयार सवाल पर सटीक स्क्रिप्ट पढ़ते हुए जवाब दिये। यह वही सवाल-जवाब थे जिसे प्रधानमंत्री पढ़ने जा रहे थे।

पूरी योजना इतनी विस्तार से थी कि उन्होंने कोयम्बटूर से एक छात्र जिसका नाम विकास था, उसे सबसे आगे की पंक्ति में खींच लिया ताकि प्रधानमंत्री जी मजाक-मजाक में बोल सके कि 'विकास' दक्षिण तक पहुँच गया।

अब कार्यक्रम अपने चरम पर था। प्रधानमंत्री पधार चुके थे। मोदी का जादू सर चढ़ कर बोल रहा था। उन्होंने उन चुटकुलों और सवालों को हटा दिया जो काम के नहीं मालूम हो रहे थे।

खेल शुरू था। हमने कैमरे बाहर निकलते देखे। अब हम उनके दोनों तरफ दो टेलीप्रॉम्प्टर देख सकते थे। हमारे हॉल में उपस्थित भक्त श्रोताओं को पहले से ही पता था कि प्रधानसेवक क्या बताने जा रहे हैं इसलिए उनका उत्साह चरम पर था।

इस पूरे जनसम्पर्क की नौटंकी को बहुत सावधानी से गढ़ा गया था और अगले दिन के लिए सुर्खियाँ तैयार थी कि हमारे प्रधानमंत्री ने छात्रों को उद्यमशीलता के लिए प्रेरित किया।

दरअसल सच तो यह है कि हमारे प्रधानसेवक के मुँह से निकलने वाली हर चीज पहले से तैयार हुई होती है और असलियत में वह बिना लिखी हुई स्क्रिप्ट के किसी भी सवाल का जवाब नहीं दे सकते। तभी शायद बिना पहले से तैयार इंटरव्यू का सामना करने या प्रेस कॉन्फ्रेंस करने की उनमें हिम्मत नहीं है।

चन्दा कोचर पर एफआईआर से सीबीआई पर क्यों भड़के जेटली? किसे बचा रहे हैं?

आपने ऐसा कितनी बार सुना है कि सरकार का सबसे ताकतवर कैबिनेट मंत्री अपनी ही जाँच एजेंसी की खुलेआम आलोचना कर रहा हो? साफ बात यह है कि मामला जो नजर आ रहा उससे कही अधिक पेचीदा है!

धोखाधड़ी के मामले में आईसीआईसीआई बैंक की पूर्व प्रमुख चन्दा कोचर के खिलाफ चल रही जाँच के मामले में केन्द्रीय मंत्री अरुण जेटली ने सीबीआई को ही निशाने पर ले लिया।

जेटली ने लिखा, "पेशेवर जाँच और जाँच में दुस्साहस के बीच आधारभूत अन्तर है। हजारों किलोमीटर दूर बैठा, मैं जब आईसीआईसीआई केस में सम्भावित लक्ष्यों की सूची पढ़ता हूँ तो एक ही बात मेरे दिमाग में आती है कि लक्ष्य पर ध्यान देने की जगह अन्तहीन यात्रा का रास्ता क्यों चुना जा रहा है?"

जेटली ने यह टिप्पणी ऐसे वक्त की है, जब एक ही दिन पहले सीबीआई ने चन्दा कोचर के खिलाफ धोखाधड़ी के मामले में बैंकिंग क्षेत्र के के वी कामथ तथा अन्य को पूछताछ के लिए नामजद किया है।

ये अन्य कौन है इसके बारे में मीडिया खामोश है! एकमात्र नाम के वी कामथ का सामने आ रहा है। के वी कामथ भारतीय बैंकिंग क्षेत्र की दिग्गज हस्ती हैं और आईसीआईसीआई बैंक के पूर्व चेयरमैन रह चुके हैं।

आईसीआईसीआई ग्रुप कभी मुख्य कार्यकारी अधिकारी बनाने की फैक्ट्री थी। इसमें काम करने वाले कई कर्मचारी आज देश में बड़े पदों पर कार्यरत हैं। कामथ ने ही देश की दो सबसे बड़ी महिला बैंकर्स चन्दा कोचर और शिखा शर्मा को ऊपर उठाया था। इन दोनों ने आईसीआईसीआई ग्रुप में के वी कामथ के परामर्श में लम्बे समय तक काम किया है। शिखा शर्मा पर भी एक्सिस बैंक के सीईओ रहते भ्रष्टाचार के कई आरोप लग चुके हैं।

कामथ ने एक बार कहा था, "मैंने जितने लोगों को सिखाया उसमें चन्दा मेरी फेवरेट है।" जब कामथ 2009 में रिटायर हुए तो चन्दा कोचर को ही उनका उत्तराधिकारी बनाया गया।

कामथ भारतीय उद्योग जगत में बहुत प्रभावशाली हस्ती माने जाते हैं। कहा जाता हैं कि जब धीरूभाई अम्बानी की विरासत का बँटवारा करने का प्रश्न आया तो कोकिलाबेन ने दोनों बेटों के बीच मध्यस्थता कराने के लिए जिन लोगों को चुना था उसमें कामथ भी एक थे। के वी कामथ ने तब यह सुझाया था कि आरआईएल और आईपीसीएल का विलय करके एक कम्पनी बनायी जाये और फिर उसे दो हिस्सों में करके दोनों भाइयों मुकेश अम्बानी और अनिल अम्बानी में बराबर बाँट दिया जाये। इस सुझाव पर मुकेश अम्बानी को आपत्ति थी, लिहाजा, आरआईएल और आईपीसीएल मुकेश के हिस्से में आयीं। रिलायंस इन्फोकॉम (कम्युनिकेशन), रिलायंस कैपिटल और रिलायंस एनर्जी की कमान अनिल के हाथों में गयी। उसके बावजूद 2005 में हुए बहुप्रचारित बँटवारे के पहले कामथ ने दोनों भाइयों के बीच मध्यस्थता में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी थी।

साफ है कि कामथ उद्योग और बैंकिंग के क्षेत्र में बहुत मजबूत पकड़ रखने वाले शख्स हैं। मोदी सरकार ने के वी कामथ को 'ब्रिक्स' देशों द्वारा स्थापित किये जा रहे 50 अरब डॉलर के 'न्यू डेवेलपमेंट बैंक' (एनडीबी) का प्रमुख भी नियुक्त कर दिया। ब्रिक्स में 5 उभरते विकासशील देश ब्राजील, रूस, भारत, चीन और दक्षिण अफ्रीका शामिल हैं, इन्ही देशों ने पिछले साल एनडीबी स्थापित करने पर समझौता किया था। समझौते के मुताबिक भारत को इस बैंक का पहला अध्यक्ष नियुक्त करने का अधिकार मिला था, इसलिए इस पद पर कामथ की नियुक्ति की गयी है और अब उन्हीं कामथ से सीबीआई पूछताछ कर रही है।

लेकिन सीबीआई सही कर रही है, क्योंकि वीडियोकॉन के मालिक वेणुगोपाल धूत से जब चन्दा कोचर के बारे में पूछा गया तो धूत ने कहा था कि जिस समिति ने विडियोकॉन ग्रुप के 3,250 करोड़ रुपये के कर्ज को मंजूरी दी थी, उसके 12 सदस्यों में से चन्दा कोचर मात्र एक सदस्य थी। उन्होंने यह महत्त्वपूर्ण दावा भी किया था कि जिस समिति ने यह कर्ज मंजूर किया है उसके अध्यक्ष के वी कामथ थे और आईसीआईसीआई बैंक के पूर्व चेयरमैन के वी कामथ को वह पर्सनली जानते भी थे। वह उनके साथ लंच पर जाया करते थे।

यानी भाँग पूरे कुएँ में ही घुली हुई थी, इसलिए सबकी जाँच होनी चाहिए। इसमें कुछ भी गलत नहीं है, लेकिन जो रिलायंस के इतने करीबी हो उसे मोदी के केन्द्रीय मंत्री क्यों न बचायें। चन्दा कोचर का रिलायंस से भी नाता है। चन्दा की बेटी आरती रिलायंस इंडस्ट्रीज में काम करती हैं। उनकी शादी आदित्य काजी से हुई है। आदित्य का पूरा परिवार उद्योगपति अम्बानी फैमिली का करीबी है। आदित्य और आरती फिलहाल मुम्बई में रिलायंस कम्पनी में कार्यरत हैं। आदित्य के पिता समीर काजी और माँ राधिका को अम्बानी परिवार का करीबी माना जाता है।

--गिरीश मालवीय (साभार मीडिया विजिल)

पुस्तक परिचय

मातीगारी

वह देशभक्त जिसने गोलियाँ झेली हैं।

-- अनुराग मौर्य

'मातीगारी' उपन्यास न्गुगी वा थ्योंगो द्वारा गिकूयू भाषा में पहली बार 1986 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास के चलते केन्या में एक तूफान खड़ा हो गया। इसे पढ़ने के बाद जो सवाल इस उपन्यास का नायक 'मातीगारी' दुहराता है, लोगों के जुबान पर वही सवाल घूमने लगे। लोग एक दूसरे से वही सवाल पूछने लगे। इस उपन्यास ने केन्याई समाज में उथल-पुथल मचा दिया। कुछ ही दिनों में हालत यह हो गयी कि उपन्यास का पात्र न होकर 'मातीगारी' वास्तविक नेता की तरह प्रसिद्ध हो गया। मातीगारी सरकार की आँखों की किरकिरी बन गया। केन्याई सरकार ने मातीगारी को गिरफ्तार करने का आदेश तक जारी कर डाला। पुलिस ने गिरफ्तारी का वारंट लेकर लोगों से पूछताछ की और मातीगारी को गिरफ्तार करने की पूरी कोशिश की। मातीगारी की असलियत जानने के बाद सरकार और पुलिस की बौखलाहट बढ़ गयी। इसके चलते 'मातीगारी' की प्रतियाँ दुकानों और प्रकाशनों से जब्त की गयीं, साथ ही लोगों के घरों पर छापा मारकर भी जब्त कर ली गयीं। केन्याई जनता को जागरुक करने में 'मातीगारी' ने बहुत बड़ी भूमिका निभायी है। किसी उपन्यास की इससे बड़ी उपलब्धि क्या होगी कि राजसत्ता उससे डर कर उसके पात्र को गिरफ्तार करने का आदेश दे दे। यह उपन्यास अफ्रीकी देशों की जनता के मुद्दों को समेटता है, जैसे-- शोषण, उत्पीड़न, उपनिवेशवाद, समाज के रेशे-रेशे का विघटन, नवउपनिवेशवाद और पूँजीवाद।

उपन्यास का नायक मातीगारी मा नजीरूंगी एक देशभक्त है। (जिसका शाब्दिक अर्थ है-- वह देशभक्त जिसने गोलियाँ झेली हों) उपन्यास औपनिवेशिक बर्बर अत्याचारों का कच्चा चिट्ठा है। अफ्रीका ने उपनिवेशवाद के चलते अमानवीय पीड़ा झेली है। इस उपन्यास के द्वारा न्गुगी उपनिवेशवाद की दासता में जकड़े अफ्रीकी समाज को दिखाते हैं। समाज में बच्चों और महिलाओं की स्थिति के साथ न्गुगी यह भी दिखाते हैं कि किस तरह से पुलिस प्रशासन, फौज और व्यवस्था के संचालक (जिनका रंग अब बदल चुका है) येन केन प्रकारेण उपनिवेशवादियों की ही सेवा करते हैं। अपने लोगों के खिलाफ जाकर उपनिवेशवादियों और उनकी सम्पत्ति की ही रक्षा करते हैं। पूरे देश की सम्पत्ति पर उपनिवेशवादियों का कब्जा होता है और किस तरह से देश का निर्माण करने वाली जनता गरीबी और कंगाली में धकेल दी जाती है।

उपन्यास की शुरुआत में हम पाते हैं कि मातीगारी ने अपनी मातृभूमि को आजाद करने के लिए सेटलर विलियम्स जैसे उपनिवेशवादियों से कई वर्षों तक जंगलों, नदियों के किनारे और पहाड़ों पर एक के बाद एक कई लड़ाइयाँ लड़ी। उसके बाद उसने सेटलर विलियम्स और उसके काले नौकर जॉन बॉय को शिकस्त दी। उसे पता चला कि आजादी मिल चुकी है। यह सोचकर कि अब इन हथियारों की क्या जरूरत है, उसने अपने सारे हथियार एक पेड़ के नीचे गाड़ दिये और शान्ति की पेटी बाँध ली। मातीगारी ने शान्तिपूर्ण तरीके से अन्याय और संघर्षों को खत्म करने की शपथ ली। लेकिन घर जाने से पहले वह अपने लोगों को ढूँढना चाहता था।

मातीगारी ने देखा कि मसलन अब गोरे शासकों की जगह काले शासकों की नियुक्ति के अलावा देश की व्यवस्था में कोई बदलाव नहीं हुआ है; हमारे बच्चों और औरतों की स्थिति अब भी खराब है। मातीगारी एक शहर में पहुँचा। उसने देखा कि देशभक्तों के बच्चे कचरे के ढेर से सामान बीन रहे हैं। मातीगारी को बहुत दुख हुआ। उसने सोचा कि देशभक्त जो आजादी के लिए लड़े थे, अपनी धरती, अपने करखानों और अपने घरों के लिए, उनके बच्चों की ऐसी दुर्दशा है, वह काँप गया। उसने अपनी एके-47 निकालने के लिए कमर पर अपना हाथ रखा, पर उसे याद आया कि उसने शान्ति की पेटी बाँध ली है। इसी बीच मातीगारी की मुलाकात गुथेरा से हुई, जो चर्च के उच्च अधिकारी की बेटी थी। उसने कभी गरीबी नहीं देखी थी। वह ईश्वर में लीन रहने वाली लड़की थी। गुथेरा के पिता देशभक्त थे। पुलिस वालों ने उन पर आतंकवादी होने का आरोप लगाया। जब गुथेरा ने पुलिस से उनकी जान बचाने की प्रार्थना की तो उस पुलिस वाले ने गुथेरा से कहा कि "तुम अपने बाप की जिन्दगी को अपनी टाँगों में लिये बैठी हो"। उसने उस कुँआरी लड़की से व्यभिचार के लिए दबाव बनाया। गुथेरा ने इनकार कर दिया और पिता की मृत्यु के बाद भाई-बहनों की जिम्मेदारी उस पर आ पड़ी। गुथेरा पर कठिनाइयों के पहाड़ टूट पड़े। उसके कपड़े चिथड़े में बदल गये। लोग उसे आतंकवादी की बेटी कहकर उससे दूर होने लगे।

घर में खाने के लाले पड़ गये। अन्त में गुथेरा व्यभिचार करने को मजबूर हो गयी। मातीगारी गुथेरा की कहानी सुनकर एक बार फिर सोच में पड़ गया। फिर उसने अपनी एके-47 निकालने के लिए कमर पर अपना हाथ रखा। पर उसे याद आया कि उसने शान्ति की पेटी बाँध ली है। इस तरह अपने उपन्यास में न्गुगी एक नवउपनिवेशवादी देश में बच्चों और औरतों की स्थिति को दर्शाते हैं।

उपन्यास में बच्चों, औरतों, मजदूरों और गुलामों के साथ ही देश की बाकी जनता की मनोस्थिति को दिखाते हुए न्गुगी तीन दौर की स्पष्ट तस्वीर खीचते हैं। पहले में उपनिवेशवादी दौर की मनोस्थिति को दिखाते हैं। न्गुगी के उपन्यास में उपनिवेशवाद का किरदार सेटलर विलियम्ज है। वह गोरा उपनिवेशवादी था। गुलामी के बारे न्गुगी अपने उपन्यास में कहते हैं कि "इस संसार में गुलामी से बदतर और कुछ नहीं है। गुलामी! आह, गुलामी! दिलो दिमाग को बन्धक बना देने वाली"। दूसरा, जब गुलामों ने औपनिवेशिक शासन के अधीन जीने से इनकार कर दिया। वे हथियार उठाकर उपनिवेशवादियों से लड़े। उन्हें मात दे दिया। देश को तथाकथित रूप से आजादी मिल गयी। अब सत्ता पर अपने ही जैसे काली चमड़ी वाले लोग काबिज हैं। लेकिन न्गुगी बताते हैं कि अगर हम आजाद हैं तो बच्चों, औरतों, मजदूरों और आम लोग आज भी गुलाम की स्थिति में क्यों हैं? हम आज भी उपनिवेशवादी वर्दी में क्यों हैं? हम आज भी उपनिवेशी भाषा में क्यों लिखते-पढ़ते हैं? ऐसे ढेरों बारीक सवालों के माध्यम से न्गुगी नवउपनिवेशवादी दौर की तस्वीर खींचते हैं। लेखक मातीगारी के माध्यम से पूछते हैं कि अगर हम आजाद हो गये हैं तो अभी भी सारी सम्पत्ति गोरों के पास क्यों है? अभी भी गोरे ही मालिक क्यों हैं? हमारे बच्चे, औरतें और नौजवान अभी भी गुलाम क्यों हैं? हमारी औरतें व्यभिचार करने को मजबूर क्यों हैं? इस तरह न्गुगी बताते हैं कि जनता का शोषण नहीं बदला है, लेकिन शासक का स्वरूप बदल गया है? थोड़ी बहुत सतही तब्दीलियों के अलावा कुछ बदलाव नहीं हुआ। जनता को जगाने के लिए न्गुगी कहते हैं कि "जिस देश के लोग भयभीत होकर रहते हैं, वह देश दुःखों का घर बन जाता है।"

देश की यह स्थिति देखकर मातीगारी परेशान हो गया और सत्य और न्याय की खोज में निकल पड़ा। सत्य और न्याय की खोज में मातीगारी देश के कोने-कोने में भटका, विभिन्न तबकों से मिला, जैसे-- उसने राजनीतिज्ञों, छात्रों, अध्यापकों और पादरियों से सवाल पूछा--

"मेरा सवाल यह है-- राजगीर घर बनाता है और जो घर को केवल बनते हुए देखता है, अन्त में उसका मालिक बन बैठता है। राजगीर खुले आकाश के नीचे सोता है। उसके सिर पर कोई छत नहीं है। दर्जी कपड़े सिलता है और जिसे सुई में धागा डालना तक नहीं आता, कपड़े पहनता है और दर्जी चिथड़े पहन कर घूमता है। खेत जोतने वाला खेत में फसल उगाता है और वह व्यक्ति जो केवल फसल काटता है जो कभी बोता नहीं, अधिक खाने के कारण जम्हाई लेता है और खेत जोतने वाला खाली पेट होने के कारण जम्हाई नहीं लेता। श्रमजीवी वस्तुओं का उत्पादन करता है, विदेशी और परजीवी उन्हें हड़प लेते हैं और मजदूर खाली हाथ रह जाता है। इस धरती पर सत्य और न्याय कहाँ है?"

मातीगारी सत्य और न्याय की खोज में पूरे देश में घूमता रहा। कई बार वह निराश हुआ, लेकिन फिर उसने सोचा कि "सत्य का सच्चा साधक कभी आशा नहीं खोता। वास्तविक न्याय का सच्चा साधक कभी नहीं थकता। एक किसान सिर्फ एक फसल की विफलता के कारण बीज बोना बन्द नहीं करता। सफलता एक बार फिर कोशिश करने और प्रयास करने से पैदा होती है। सत्य की तलाश करनी चाहिए।" फिर वह और अधिक इच्छा शक्ति के साथ सत्य और न्याय की खोज में निकल पड़ा। लेकिन उसे सत्य और न्याय कहीं नहीं मिला। वह और भी ज्यादा बेचैन हो गया। अन्त में मातीगारी को यकीन हो गया कि "दुश्मन को सिर्फ हथियारों से पराजित नहीं किया जा सकता, लेकिन केवल शब्दों से भी दुश्मन को हराना कठिन है। पहली बात है-- शब्द सही होने चाहिए और दूसरी बात-- इन शब्दों को हथियार की ताकत से मजबूत किया जाना चाहिए।" यहाँ न्गुगी बताते हैं कि आजादी के लिए विचारों के साथ-साथ हथियारों से भी लैस होना जरूरी है। उपन्यास के अन्त में मातीगारी ने सत्य और न्याय के लिए, अपने लोगों की आजादी के लिए अपने पीठ पर बँधी शान्ति की पेटी को उतार कर फेंक दिया।

न्गुगी अपने इस उपन्यास के जरिये राजनीतिक, न्यायिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पहलुओं में हुए औपनिवेशिक बदलावों पर सवाल करते हैं। यहाँ तक कि औपनिवेशिक गुलामी के लक्षणों और उससे पड़ने वाले प्रभावों पर भी सवाल उठाते हैं। मातीगारी उपन्यास एक सवालों की किताब है, जिसमें न्गुगी अपने नायक मातीगारी के जरिये सवाल करते हैं। यह उपन्यास हमें अपने देश के लोगों की मनोस्थिति समझने में भी मदद करता है। किस तरह से औपनिवेशिक शासन खत्म होने के बाद भी उसकी संस्कृति, शिक्षाएँ, मूल्य-मान्यताएँ, गुलामी के विचार समाज में यथावत बने रहते हैं। औपनिवेशिक, नवऔपनिवेशिक विचार दिलो-दिमाग में रच-बस जाता है। हम न चाहते हुए भी सालों तक औपनिवेशिक विचारों से जकड़े रहते हैं। यह उपन्यास औपनिवेशिक और नवऔपनिवेशिक विचारों से लड़ने में हमारी मदद करता है।

पुस्तक	:	मातीगारी
लेखक	:	न्गुगी वा थ्योंगो
अनुवाद	:	राकेश वत्स
प्रकाशक	:	गार्गी प्रकाशन 1/4649/45बी, गली नं. 4, न्यू मॉडर्न शाहदरा, दिल्ली--110032
कीमत	:	110 रुपये

डीएचएफएल घोटाला : नवउदारवाद की एक और झलक

-- अमित राणा

ऐसा कोई दिन नहीं जाता, जब देश के महामहिम अखबार के पहले पन्ने पर देश की अवाम की प्रगति, खुशहाली की डींगें मारते न दिखायी दें और उसी अखबार के किसी कोने में किसी न किसी बड़ी कम्पनी के डूबने या किसी घोटाले की खबर न हो। यह अद्‌भुत समय है कि विकास गाथा का बखाान हो रहा है और विनाश लीला रची जा रही है।

29 जनवरी को दिल्ली के प्रेस क्लब में एक प्रेस कॉन्फ्रेन्स आयोजित हुई थी। यह आयोजन एक जानी-मानी समाचार कम्पनी कोबरा पोस्ट ने किया था, जिसमें कोबरा पोस्ट के सम्पादक अनिरुद्ध बहल, पूर्व भाजपा नेता यशवन्त सिन्हा, वित्तीय घोटालों के विशेषज्ञ पत्रकार जोसेफ, प्रांजय गुहा ठाकुराता और सुप्रीम कोर्ट के वरिष्ठ वकील प्रशान्त भूषण शामिल थे।

प्रेस कॉन्फ्रेन्स में 'दीवान हाउशिंग फाइनेन्स लिमिटेड' (डीएचएफएल) में 31,000 करोड़ रुपये के घोटाले का पर्दाफाश किया गया। डीएचएफएल एक गैर बैंकिंग वित्तीय संस्था है, जो राष्ट्रीय आवास बैंक के साथ पंजीकृत है और भारतीय रिजर्व बैंक की पूर्ण स्वामित्व वाली सहायक कम्पनी है। यह भारत की हाउशिंग फाइनेन्स कम्पनियों को नियंत्रित करती है और मुख्य रूप से झुग्गी पुनर्वास, आवास विकास और अचल सम्पत्ति के दूसरे व्यवसायों के लिए धन मुहैया कराती है।

कपिल वाधवन, अरुण वाधवन और धीरज वाधवन डीएचएफएल के प्रमुख हैं। डीएचएफएल का घोटाला वित्तीय वर्ष 2018-19 के कुल स्वास्थ्य बजट का 59 फीसदी है। इससे हम इस घोटाले के आकार का अनुमान लगा सकते हैं।

डीएचएफएल की कुल परिसम्पत्ति 8795 करोड़ रुपये है। इसने अपनी हैसियत के दस गुना से ज्यादा रकम लगभग 96,000 करोड़ रुपये का कर्ज ले रखा था। डीएचएफएल की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार, यह कर्ज सरकारी और गैर-सरकारी 36 बैंकों से कर्ज लिया गया है, जिसमें एसबीआई का 11,500 करोड़ रुपये, बैंक ऑफ बड़ौदा का 5,000 करोड़ रुपये और पंजाब नेशनल बैंक तथा आईसीआईसीआई बैंक से बिना गारंटी के, कागजी आश्वासन पर लिया गया भारी कर्ज शामिल है। 96,000 करोड़ रुपये के कर्ज में से इसने 84,982 करोड़ रुपये दूसरी कम्पनियों को कर्ज के रूप में दिया। कर्ज लेकर कर्ज बाँटना, वह भी बिना जमानत के सिर्फ कागजी वादे पर, हमारी उदारवादी आर्थिक नीति की विशेषता है, क्योंकि जो रकम कर्ज पर दी जा रही है, वह कर्जदाता की नहीं है और जो कर्ज पर लेकर आगे कर्ज दे रहा है, ही उसकी भी नहीं है। वह बैंकों में जमा मेहनतकश जनता की गाढ़ी कमाई है, फिर उसे दाँव पर लगाने में क्या हर्ज है!

आइए, इस मसले को और बारीकी से समझें। डीएचएफएल ने ये कर्ज कवच कम्पनियों के जरिये दिये हैं। कवच कम्पनी को मुखौटा कम्पनी या छद्‌म कम्पनी भी कहते हैं। कवच कम्पनियाँ कागजों पर चलती हैं और किसी तरह का आधिकारिक काम नहीं करतीं। इन कम्पनियों का इस्तेमाल काले धन को सफेद करने के लिए किया जाता है।

डीएचएफएल ने कर्ज के रूप में जुटाये गये 96,000 करोड़ रुपये में से एक मोटी रकम 31,000 करोड़ रुपये कवच कम्पनियों को कर्जे के रूप में दी। कवच कम्पनियों या इनके निदेशकों के नाम पर किसी प्रकार की कोई सम्पत्ति नहीं थी। जाहिर है कि पैसा डूबना तय था। इसका नुकसान उन बैंकों और शेयरधारकों को उठाना पड़ा, जिन्होंने डीएचएफएल को पैसा दिया था।

सभी गैर-बैंकिंग वित्तीय कम्पनियों में बड़े लोन देने के लिए एक विशेष कमेटी का गठन किया जाता है। डीएचएफएल में भी इसी प्रक्रिया का पालन किया गया था। फर्क सिर्फ इतना है कि यहाँ पर 200 करोड़ रुपये से अधिक का कर्ज देने के लिए फाइनेन्स कमेटी के सदस्य इस कम्पनी के प्रमुख शेयरधारक ही हैं, यानी कपिल वाधवन और धीरज वाधवन।

डीएचएफएल की फाइनेन्स कमेटी द्वारा मंजूर किये गये कर्ज उन कवच कम्पनियों को मिले हैं, जिन पर वाधवन का नियंत्रण है। एक-एक लाख रुपये की पूँजी से दर्जनों फर्जी कम्पनियाँ बनाकर उन्हें कई नयी कम्पनियों में बाँट दिया गया। इनमें से कई कम्पनियों का पता एक ही है। इनका लेखा-जोखा भी एक ही ग्रुप से कराया गया है, ताकि घोटाले पर पर्दा डाला जा सके।

कोबरा पोस्ट ने 45 ऐसी कम्पनियों की पहचान की है, जिनका इस्तेमाल वाधवन के जरिये किया जाता था। इन कम्पनियों को 14,282 करोड़ रुपये से अधिक के कर्ज दिये गये हैं। बाद में

इन कवच कम्पनियों को दिये गये कर्ज की रकम से दुबई, मारीशस, श्रीलंका और ब्रिटेन में परिसम्पत्तियाँ खरीदी गयीं।

कोबरा पोस्ट द्वारा चिन्हित की गयी 45 कम्पनियों में से 34 कम्पनियों की आय का पता नहीं चला है और न ही उनके व्यापार का। डीएचएफएल के प्रोमोटरों ने मनी लार्ड्रिंग का यह खेल रिजर्व बैंक और वित्त मंत्रालय की नाक के नीचे खेला। इस घोटाले को न आयकर विभाग पकड़ पाया, न ही आडिट करने वाली एजेंसियाँ। आखिर ऐसा कैसे हो सकता है कि लाखों किसान कर्ज न चुका पाने के कारण आत्महत्या कर लेते हैं, वहीं डीएचएफएल जैसी कम्पनियाँ करोड़ों रुपये के घोटाले करती हैं और किसी के कान पर जूँ तक नहीं रेंगती? इसका जवाब है 'जब सईंया भये कोतवाल तो डर काहे का'। कपिल वाधवन और धीरज वाधवन की कम्पनियाँ, आरकेडब्ल्यू डेवलपर्स, स्किल रियलटर्स प्राइवेट लिमिटेड और दर्शन डेवलपर्स प्राइवेट लिमिटेड ने भाजपा को 2014-15 और 2016-17 के बीच कुल 19.5 करोड़ रुपये का चन्दा दिया था। भाजपा को दिया गया चन्दा कम्पनी अधिनियम 2013 की धारा 182 का उल्लंघन है, जिसके अनुसार, कोई भी कम्पनी अपने पूर्ववर्ती तीन वित्तीय वर्षों के दौरान अर्जित औसत शुद्ध लाभ का 7.5 फीसद ही चन्दा दे सकती है। जबकि वित्तीय वर्ष 2012-13 में इस कम्पनी को 25 लाख रुपये का नुकसान हुआ।

कम्पनी अधिनियम धारा 182 के अनुसार, प्रत्येक कम्पनी को अपने लाभ-हानि खाते में किसी भी राजनीतिक दल को दिये गये चन्दे का खुलासा दिये गये कुल चन्दे और पार्टी के नाम सहित दर्शाना होता है, लेकिन डीएचएफएल और इसकी सहायक इन तीनों कम्पनियों ने इस नियम का पालन नहीं किया। यह दर्शाता है कि बैंकों में जमा जनता की गाढ़ी कमाई की लूट बिना राजनीतिक बल के नहीं हो सकती। कोबरा पोस्ट की जाँच में एक बात और सामने आयी है कि जिन कवच कम्पनियों को महाराष्ट्र में स्लम पुनर्वास के नाम पर कर्जे दिये गये, उनका नाम स्लम पुनर्वास प्राधिकरण के वेबसाइट में कहीं नजर नहीं आता। गौरतलब है कि इन कवच कम्पनियों के तार वाधवन ग्रुप और सहाना ग्रुप से जुड़े हुए हैं और सहाना ग्रुप के निदेशक जितेन्द्र जैन अभी जेल में है। वित्त मंत्रालय की आर्थिक अपराध शाखा उस पर गम्भीर आर्थिक अपराधों की जाँच कर रही है। सहाना ग्रुप का एक और नामी और प्रमुख शेयरधारक डालवी शिवराम गोपाल है, जो शिवसेना का पूर्व विधायक है।

अब तक का सबसे बड़ा यह गैर-बैंकिंग वित्तीय संस्थान घोटाला, आर्थिक, राजनीतिक और आपराधिक तीनों पहलुओं को दर्शाता है।

आखिर क्या कारण है कि इतने बड़े घोटाले की कहीं कोई सुगबुगाहट नहीं है? सरकार के कान पर जूँ तक नहीं रेंग रही है? मीडिया में डीएचएफएल के शेयर की कीमत गिरने की खबर तो आयी, लेकिन कौन बरबाद हुआ, इसका कोई जिक्र नहीं है।

गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थान बैंक न होते हुए भी वित्तीय सहायता प्रदान करते हैं। लेकिन इनका अपना कोई धन नहीं होता और धन का जुटान यह शेयर जारी करके, अल्पकालिक कर्ज, जैसे-- म्युचुअल फंड और दीर्घकालिक कर्ज बैंकों से ब्याज पर लेकर करते हैं। इन माध्यमों से जो धन जुटाया जाता है, वह बैंक में जमा जनता की मेहनत की कमाई होती है। इस क्षेत्र में कुछ भी उत्पादन नहीं होता। वह सिर्फ कागजों पर होता है। जनता के उसी पैसे को ये अपनी सहूलियत के हिसाब से नियमों को ताक पर रखकर आगे जनता को ब्याज पर देते हैं और उससे मुनाफा कमाते हैं। वित्तीय सहायता जैसे लुभावने शब्दजाल के सहारे ये अपनी लूट के कारोबार को कानूनी जामा पहना कर दिन-दूनी, रात-चौगुनी तरक्की करते हैं। इस एक बात से ही लूट के इस कारोबार को समझ सकते हैं कि डीएचएफएल की हैसियत 8,795 करोड़ रुपये है जबकि उसने 96,000 करोड़ रुपये कर्ज के रूप में हासिल किया।

आज देश के हर हिस्से में गैर-बैंकिंग वित्तीय संस्थान हजारों की संख्या में अपनी लूट के कारोबार को बढ़ा रहे हैं। आये दिन किसी न किसी कम्पनी के भाग जाने, डूब जाने, दिवालिया हो जाने की खबरें आती रहती हैं।

अभी हाल ही में एक गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थान आइएल एंड एफएस के डूबने की खबर आयी है। इस कपनी ने जनता का 91 हजार करोड़ रुपया दाव पर लगा दिया। सरकार ने आनन-फानन एक जाँच समिति गठित की और अपना एक निदेशक मंडल भी गठित किया, लेकिन उसने डीएचएफएल घोटाले में जाँच करना जरूरी नहीं समझा। विजय माल्या का 9,500 करोड़ का घोटाला, विनसम डायमंड्स का 7,000 करोड़ रुपये का घोटाला, नीरव मोदी का 13,000 करोड़ रुपये का घोटाला और न जाने कितने घोटाले जारी हैं।

अब यह सवाल उठना सही है कि इस देश की सरकार तथा न्याय और कानून व्यवस्था क्या कर रही हैं? क्या वित्तमंत्री साहब अनभिज्ञ हैं, बिलकुल नहीं!

सीबीआई में एक विभाग है, बैंकिंग एंड सिक्योरिटी फ्राड सेल (बीएसएफसी)। इस सेल के एसपी थे सुधांशु धर मिश्रा। इन्होंने 22 जनवरी को बैंक फ्राड मामले में चन्दा कोचर, जो आईसीआईसीआई बैंक की सीईओ हैं, के खिलाफ, उनके पति दीपक कोचर और वीडियोकोन के वीएन धूत के खिलाफ बैंकफ्राड के मामले में एफआईआर दर्ज की थी। उनकी एफआईआर में सिर्फ इनके ही नहीं, स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक के सीईओ जतीन दारूवाला, टाटा कैपिटल के प्रमुख राजीवन सबरवाल, गोल्डमैन शैश इंडिया के चेयरमैन संजय चटर्जी, बैंकिंग सेक्टर के डान कहे जाने वाले के वी कॉमथ के भी नाम हैं।

एफआईआर की आहट पाते ही हमारे वित्तमंत्री नींद से जाग गये। 22 जनवरी के दो दिन बाद वित्तमंत्री अरुण जेटली ने आरोपियों के बचाव में ब्लॉग लिखा। सीबीआई की आलोचना करते हुए उन्होंने कहा-- यह जाँच नहीं रोमांचवाद है, जो कहीं नहीं पहुँचता। वित्तमंत्री के इन शब्दों में आरोपियों के लिए कितना दर्द समाया है! इसके बाद एफआईआर दर्ज करने वाले अधिकारी का तबादला कर दिया गया।

यही है नवउदारवादी व्यवस्था जिसमें देश का वित्तमंत्री खुलेआम आरोपियों के बचाव में खड़ा हो, यह व्यवस्था उत्पादन के जरिये नहीं बल्कि कूपन काटकर जनता को लूटती है। यह अर्थव्यवस्था ऐसे ही घोटालेबाजों और मंत्रियों को जन्म दे सकती है।

मौजूदा सरकार ने एक और नया शगूफा उछाला है, एनपीए यानी भूल जाना। मार्च 2015 तक बैंकों का 3,23,464 करोड़ रुपये एनपीए था, जो दिसम्बर 2017 में 9,063 कर्जदारों पर 11 लाख करोड़ हो चुका है। अगर वर्तमान परिस्थिति की बात की जाय तो यह हाल तो तब है जबकि बैंकों ने 35 लाख करोड़ रुपये के कॉरपोरेट कर्जों को अभी तक घोषित ही नहीं किया है, जिसमें से 2020 तक 40 फीसदी को एनपीए बन जाने की सम्भावना है। यह सारी रकम जनता के खून-पसीने की एक-एक बूँद से पैदा हुई है।

अभी हाल ही में रिजर्व बैंक और सरकार की टकराहट ने भारतीय अर्थव्यवस्था की मजबूती का नकाब उतार फेंका है। सरकार ने अपने बजट में बैंकों और वित्तीय संस्थानों को 650 अरब रुपये देने का प्रावधान रखा है। इतना धन इसलिए दिया जा रहा है, क्योंकि बैंकों ने जो कर्ज दिये थे, वे चुकता नहीं किये गये और उनके पास और कर्ज देने के लिए धन नहीं है।

डीएचएफएल का संकट सिर्फ उसका अपना संकट नहीं है। यह आज की भारतीय अर्थव्यवस्था की एक झलक है। गैर-बैंकिंग वित्तीय संस्थानों में बैंकों का 4,96,400 करोड़ रुपया फँसा हुआ है। अगर यह क्षेत्र डूबता है तो बहुत से बैंक डूबेंगे और उनके साथ ही करोड़ों जमाकर्ताओं की जिन्दगियाँ भी तबाह हो जाएँगी।

दरअसल यह संकट भारतीय अर्थव्यवस्था को चलाने वाली आर्थिक उदारीकरण की नीतियों का है। आज भारतीय अर्थव्यवस्था का पहिया ऐसी जगह आकर फँस गया है, जहाँ से उसका निकलना नामुमकिन है और हमारे रहनुमा यह बात अच्छी तरह जान गये हैं। इन आर्थिक नीतियों ने गैर-बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं जैसे गैर-उत्पादित क्षेत्र को एक ऐसे खौफनाक आर्थिक दैत्य में बदल दिया है, जिसने उत्पादन के क्षेत्र को तबाह कर दिया है।

अब यह दैत्य पूरी अर्थव्यवस्था को तबाह करने के रास्ते पर बढ़ चुका है। राजनीतिक नेतृत्व की मजबूरी है कि वह न तो दैत्य का संहार कर सकता है और न ही इसकी जन्मदायिनी अर्थव्यवस्था को मरते देख सकता है। असफलता और तबाही के इस मंजर को जनता से छिपाने के लिए हर रोज झूठ का एक नया तूफान खड़ा करके राजनेता जनता के गुस्से को टाल रहे हैं। लेकिन कहते हैं कि सभी लोगों को सदा के लिए मूर्ख नहीं बनाया जा सकता। जनता जल्दी ही उदारवादी नीतियों के इस तम्बू को उखाड़ फेकने के लिए मजबूर हो जायेगी।

यह किसका राष्ट्र है?

पेट भरने के लिए
रोटी चुराने वाले की हत्या हो सकती है
लेकिन हजारों करोड़ लूटने वाला
कंगारू की खाल का कोट पहन कर घूमता है देश-विदेश
यह है नए भारत का राम राज्य!

वचन भंग करने वाले राजा से कोई प्रश्न ना करे
और जो प्रश्न करे वो डरे
या माफी माँगे या मरे
यह किस चाणक्य का मगध है?

कुशासन पर उँगली उठाने वाले राज्य द्रोही हैं
यह मत देखो कि अँधेरा फैलाने वाला उजाला किसका है?
आज देखना ही द्रोह है!
यह किसका विधान है?

ताबूत देख कर उत्साहित है एक भोली भीड़
चीखना ही वीरता है
और नारे लगाना शहादत से बढ़ कर है।

यह किसकी भूमि है?
सब सो ना गये हों एक साथ तो
कोई तो बताओ यह किस हरिश्चन्द्र का राष्ट्र है?

-- बोधिसत्व

वेनेजुएला संकट : आन्तरिक कम बाहरी ज्यादा है

-- राजेश कुमार

वेनेजुएला दोहरे संकट से गुजर रहा है। पहला, देश के भीतर खाने के सामान और दवाओं का अभाव है। दूसरा, खुआन गोइदो के नेतृत्व में सड़कों पर विरोध प्रदर्शन हो रहे हैं। खुआन गोइदो को अमरीका ने अन्तरिम राष्ट्रपति के तौर पर स्वीकार कर लिया है। अमरीका के सुर में सुर मिलाते हुए तमाम यूरोपीय देश भी खुआन गोइदो के साथ हैं, लेकिन निर्वाचित राष्ट्रपति निकोलस मादुरो ने इसे अमरीका की तख्तापलट की साजिश बताया है। उन्होंने कहा कि अमरीका वेनेजुएला में वही सब करना चाहता है, जो उसने वियतनाम और इराक में किया। मादुरो ने हाल ही में अमरीकी जनता के नाम एक खुला पत्र लिखा कि उनके वाशिंगटन में बैठे प्रतिनिधि लोकतंत्र और मानवाधिकारों के नाम पर वेनेजुएला के प्राकृतिक संसाधनों पर कब्जा करना चाहते हैं। उन्होंने यह भी लिखा कि भले ही हमारी और आपकी विचारधारा अलग हो, पर हम भी आप जैसे ही लोग हैं।

वेनेजुएला के बारे में अमरीकी रणनीति उसे तीन तरीकों से घेरने पर टिकी है। पहला तरीका है विपक्ष के नेता गोइदो को राजनीतिक और आर्थिक समर्थन देकर। हाल ही में खुलासा हुआ है कि खुआन गोइदो को विदेशों से खूब आर्थिक सहयोग मिल रहा है। आर्थिक सहयोग देने वाले संगठन कोई और नहीं, बल्कि साम्राज्यवादी देशों को व्यापार के अवसर मुहैया कराने वाले अन्तरराष्ट्रीय संस्थान हैं, जो गिद्ध की तरह दुनियाभर के देशों में आर्थिक और राजनीतिक संकट को तलाशते रहते हैं और अपनी नीतियाँ और फण्ड लेकर पहुँच जाते हैं।

अमरीका का वेनेजुएला को घेरने का दूसरा तरीका है, आर्थिक नाकाबन्दी। वेनेजुएला की सरकारी तेल कम्पनी पैट्रोलेओस डे वेनेजुएला एसए (पीडीवीएसए) की परिसम्पत्तियों को अमरीका ने ब्लॉक कर दिया है। पीडीवीएसए की अमरीका में वितरण कम्पनी है सीटगो। अमरीका ने सीटगो के सारे खाते सील कर दिये हैं। वेनेजुएला की निर्यात से होने वाली आय का 98 फीसदी तेल की बिक्री से आता है। वह अपने कुल तेल का 41 फीसदी अमरीका को निर्यात करता है। अमरीका ने डॉलर देने से इनकार नहीं किया है, पर खाते सील करके वेनेजुएला की जनतांत्रिक सरकार के हाथ बाँध दिये हैं। वेनेजुएला पर रूस का करीब दो अरब डॉलर का कर्ज है, जिसकी किस्त अप्रैल 2019 में भेजी जानी है। किस्त समय से नहीं चुकायी गयी तो समझौते के हिसाब से वेनेजुएला के हाथ से सीटगो के पचास फीसदी शेयर रूस के पास चले जायेंगे।

वेनेजुएला के तेल का तीसरा सबसे बड़ा खरीददार देश भारत है। अमरीका ने वेनेजुएला से तेल न खरीदने का भारत पर भी दबाव बनाया है। अमरीका ने पर्दे के पीछे रहकर वेनेजुएला को आर्थिक रूप से तबाह करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। किसी देश की सम्प्रभुता के साथ ऐसा करना बिल्कुल लोकतांत्रिक नहीं है; लेकिन अमरीका अपने आर्थिक हितों के लिए मानवाधिकारों को अपने पैरों से रौंदता रहा है।

अमरीका द्वारा वेनेजुएला को घेरने का तीसरा तरीका है, सैन्य हस्तक्षेप। कुछ दिनों पहले वेनेजुएला की सीमा के भीतर कई अमरीकी लड़ाकू विमान नजर आये थे, जिन्हें देखकर क्यूबा ने भी अमरीकी सैन्य हस्तक्षेप की कड़े शब्दों में निन्दा की और इस घटना को पूरे दक्षिणी अमरीका के लिए विनाशकारी बताया।

अमरीका और यूरोपीय देश मादुरो के ऊपर चुनाव में धाँधली करने का आरोप लगाते हैं और फिर से चुनाव कराने की धमकी देते हैं। वे धमकी की वजह बताते हैं-- लोकतंत्र और मानवाधिकारों की रक्षा। पर हम देखते हैं कि होण्डुरस में खुद राष्ट्रपति खुआन आरलेण्डो हरनोडेज ने चुनाव में खुलेआम धाँधलेबाजी की। वह तमाम भ्रष्टाचार के आरोपों से घिरे हैं। ड्रग की तस्करी करते हुए उनका भाई नवम्बर में अमरीका में गिरफ्तार हुआ। वे लोग, जो मानवाधिकारों के रक्षक मादुरो के पीछे पड़े हैं, उन्होंने कभी होण्डुरस में फिर से चुनाव की बात नहीं की। इससे अमरीका और यूरोप की लोकतंत्र के प्रति ढकोसलेबाजी का अन्दाजा लगाया जा सकता है। सच्चाई यह है कि वेनेजुएला के प्राकृतिक संसाधनों पर कब्जा करने के लिए यह सब खेल हो रहा है।

वेनेजुएला में तीन कम्पनियाँ तेल का उत्पादन करती हैं। सबसे बड़ी कम्पनी का संचालन सरकार करती है। यह कम्पनी है पीडीवीएसए। यह दुनिया की पाँचवीं सबसे बड़ी तेल निर्यातक कम्पनी है। 2004 से 2010 के बीच पीडीवीएसए ने 61.4 अरब डॉलर सरकार के सामूहिक विकास कार्यों के लिए दिये।

1998 की बोलिवारियन क्रान्ति के बाद से ही ह्यूगो शावेज की नीतियों ने विदेशी व्यापार पर लगातार जोर दिया। वर्ष 1995 में वेनेजुएला सरकार को 2.54 अरब डॉलर का फायदा हुआ था, वहीं वर्ष 2017 में यह बढ़कर 18.7 अरब डॉलर हो गया। अमरीका ने जनवरी 1993 में 4.33 करोड़ बैरल तेल आयात किया था, जबकि 2017 में केवल 2.32 करोड़ बैरल ही आयात किया। अमरीका ने आयात कम करके वेनेजुएला को आर्थिक नुकसान पहुँचाने की पूरी कोशिश की है। अमरीकी राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार जॉन बोल्टन ने भारत सहित कई देशों को वेनेजुएला से तेल न खरीदने के लिए दबाव बनाया। 2017 से वेनेजुएला में कच्चे तेल का उत्पादन हर तिमाही में दस फीसदी कम हो रहा है। 2017 के अन्त तक यह पाँच लाख बैरल प्रतिदिन तक कम हो गया। इसका सीधा असर वेनेजुएला के विकास कार्यों पर पड़ रहा है।

वेनेजुएला की दूसरी तेल कम्पनी है-- लैगो पैट्रोलियम कॉरपोरेशन। यह एक निजी कम्पनी है। यह करीब तीस हजार बैरल तेल प्रतिदिन निकालती है। यह कम्पनी चीनी, वेस्ट इंडीजवासी और वेनेजुएला वासियों में जो सबसे सस्ता मजदूर मिलता है, उसे मजदूरी पर रखती है। ज्यादातर स्थानीय लोग इस कम्पनी में दिहाड़ी मजदूरी करने आते हैं। इसके हित मादुरो सरकार द्वारा बनायी गयी नीतियों से टकराते हैं। वेनेजुएला की तीसरी तेल और गैस कम्पनी है-- कॉरपोरेशन ट्रेबोल गैस सीए। यह भी वेनेजुएला की एक निजी कम्पनी है। इसके पास 280 गैस स्टेशन हैं। हर राज्य में इसके स्टेशन हैं। वेनेजुएला के बाजार में इसकी 16 फीसदी हिस्सेदारी है।

अमरीका की भरपूर कोशिश है कि वह वेनेजुएला की सरकारी तेल कम्पनी को बर्बाद करके निजी कम्पनियों से तेल का आयात बढ़ाये। जब पीडीवीएसए तबाह होगी, तो वेनेजुएला में सामाजिक काम भी ठप पड़ जायेंगे। फिर शिक्षा और स्वास्थ्य, घरों के निर्माण और औद्योगिक विकास पर सरकार खर्च नहीं कर पायेगी। सैन्य हस्तक्षेप का डर बना रहेगा, तो वेनेजुएला को सबसे पहले अपनी जनता के लिए भोजन और आवास के बजाय सुरक्षा की गारंटी करनी होगी।

वेनेजुएला के गर्भ में 300 अरब बैरल कच्चा तेल छुपा है। लोहा और अभ्रक जैसे खनिज भी पर्याप्त मात्रा में मौजूद हैं। लेकिन तकनीकी विकास और औद्योगिक पिछड़ेपन के चलते इन अमूल्य प्राकृतिक संसाधनों का असली फायदा अमरीका जैसे साम्राज्यवादी देश उठाते हैं, जो तकनीकी और औद्योगिक विकास में दुनिया में सबसे आगे है।

खुआन गोइदो बढ़-चढ़कर साम्राज्यवादी देशों की साजिश में हिस्सेदारी कर रहा है। इस साजिश के तहत वे वेनेजुएला के बार्डर पर मदद के साथ खड़े साम्राज्यवादी देशों को बड़े जोशो-खरोश से स्वागत-सत्कार कर रहा है। वह वेनेजुएला की सेना को बार-बार आदेश दे रहा है कि वह मदद सामग्री को जरूरतमन्दों में बाँटने का काम करे और मादुरो की सेवा करना बन्द करे। दूसरी ओर सेना लोकतांत्रिक तरीके से निर्वाचित राष्ट्रपति मादुरो के पक्ष में है, जिन्होंने कहा है कि हमें किसी साम्राज्यवादी देश की मदद नहीं चाहिए। हम खुद जरूरी सामानों का उत्पादन और वितरण करेंगे।

इस तरह वेनेजुएला के संकट को खुआन गोइदो बढ़ाने में पूरी तरह जुटा हुआ है। पीडीवीएसए पर लगे प्रतिबन्धों को हटाने के बाद ही वेनेजुएला की अर्थव्यवस्था में गति आयेगी। इस संकट का समाधान विदेशी धरती पर नहीं, वेनेजुएला की जमीन पर होगा। बोलिवारियन क्रान्ति के बाद से ही वेनेजुएला के हालात लगातार बेहतर हुए हैं, जबकि अमरीकी प्रतिबन्ध और कड़े हुए हैं। साक्षरता लगभग सौ फीसदी है। पूरी आबादी के आवास की व्यवस्था है। लेकिन खाने-पीने और दवाओं के लिए विदेशों पर निर्भरता बनी हुई है, जिसका फायदा साम्राज्यवादी देश उठाते हैं, ताकि उसे झुकाया जा सके और उस पर अपनी मनचाही शर्तें थोपी जा सकें। वे वेनेजुएला को भूखों मारने की रणनीति पर कायम हैं।

वेनेजुएला के विदेश मामलों के मंत्री जॉर्ज अर्रेजा ने कहा है, "हमें सिर्फ वेनेजुएला के लोगों द्वारा मान्यता चाहिए। साम्राज्यवादी देश तो बस कोई गलती ढूँढने का माहौल बना रहे हैं।" वे कोई ऐसी घटना चाहते हैं जिससे युद्ध थोपा जा सके। उन्होंने कहा, "वेनेजुएला की सरकार बातचीत और शान्ति चाहती है। उरूग्वेवासी और मैक्सिकोवासी बातचीत को सम्भव बनाने के लिए कड़ी मेहनत कर रहे हैं। मादुरो ने भी कहा है कि वह किसी भी बातचीत के लिए तैयार हैं। गोइदो इस चीज के लिए तैयार नहीं है क्योंकि अमरीकी सेना उसके पीछे है। वह अमरीकी लड़ाकू विमान के पंख पर बैठकर सत्ता पाना चाहता है।" मादुरो और अर्रेजा ने संकेत दिये हैं कि ऐसा होना वास्तव में अमरीका के वियतनाम पर थोपे गये युद्ध की यादों को ताजा कर देगा। पर वेनेजुएला मानता है कि युद्ध में कोई समझदारी नहीं है। वह तो केवल हमेशा चलने वाली इस तख्तापलट की साजिश का अन्त चाहता है।

व्यंग्यकार होना खतरनाक है

... उसके व्यंग्य का उद्देश्य समाज है, और जब तक समाज नहीं बदलता, तबतक उसका व्यंग्य कायम रहेगा... और जबतक उसका व्यंग्य कायम रहेगा, आपका प्रहार बेकार जाएगा।

इसलिए किसी बेअदब व्यंग्यकार को परास्त करना है, तो समाज को बदल डालिये।

--लू शुन

वेनेजुएला : तख्तापलट की अमरीकी साजिशों के बीच चरमराता हुआ एक देश

-- आनन्द स्वरूप वर्मा

वेनेजुएला का संकट गहरा होता जा रहा है। राष्ट्रपति निकोलस मादुरो (यूनाइटेड सोशलिस्ट पार्टी) का तख्ता पलटने की समूची पटकथा वाशिंगटन में लिखी जा चुकी है और उस पटकथा के अनुसार अलग-अलग किरदार अपने अभिनय में लगे हैं। 21 जनवरी को विपक्षी गठबन्धन 'यूनिटी कोलिशन' के नेता खुआन गोइदो ने खुद को अन्तरिम राष्ट्रपति घोषित किया और अमरीका, कनाडा, फ्रांस, ब्रिटेन, जर्मनी, स्पेन, बेल्जियम सहित अनेक पश्चिमी देशों ने और ब्राजील, कोलम्बिया, पेरू, चीली आदि कुछ लातिन अमरीकी देशों ने खुआन गोइदो को अपना समर्थन दे दिया। अमरीकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प ने फटाफट इस स्वघोषित राष्ट्रपति को मान्यता दे दी। इस घटना के साथ ही मादुरो सरकार ने अमरीका के साथ अपने कूटनीतिक सम्बन्ध समाप्त कर दिये। साथ ही आदेश दिया कि अमरीकी राजनयिक 72 घण्टे के अन्दर देश छोड़कर चले जायें हालाँकि इस आदेश को न तो अमरीका ने माना और न मादुरो सरकार ने इसे तूल ही दिया। अमरीका और उसके सहयोगी देशों ने माँग की है कि देश में आठ दिनों के अन्दर चुनाव कराये जायें, वरना गम्भीर परिणाम होंगे। वेनेजुएला के विदेश मंत्री खोखे अरिआस ने संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में कहा कि मादुरो का राष्ट्रपति पद पर बने रहना पूरी तरह वैध है और किसी को यह अधिकार नहीं है कि हमारे ऊपर चुनाव के लिए दबाव डाले।

रूस और चीन के साथ ईरान, सीरिया, क्यूबा, मैक्सिको, टर्की, निकारागुआ, उरुग्वे और बोलीविया ने खुलकर मादुरो सरकार का समर्थन किया है। इन देशों ने अमरीका को आगाह किया है कि वह वेनेजुएला के अन्दरूनी मामले में हस्तक्षेप करने से बाज आये। संयुक्त राष्ट्र में रूस के राजदूत वासिली नेबेंजिया ने वाशिंगटन पर आरोप लगाया है कि वह मादुरो सरकार का तख्ता पलटने की कोशिश कर रहा है। उन्होंने अमरीका को चेतावनी भी दी है कि वह किसी भी हालत में सैनिक हस्तक्षेप न करे। रूस के राष्ट्रपति ब्लादिमीर पुतिन ने एक बयान में कहा कि "वेनेजुएला में विदेशी हस्तक्षेप ने अन्तरराष्ट्रीय कानून के बुनियादी तौर-तरीकों को ध्वस्त कर दिया है।" टर्की ने इस बात पर हैरानी व्यक्त की है कि "देश में एक निर्वाचित राष्ट्रपति के होते हुए कोई खुद को राष्ट्रपति घोषित कर देता है और उसे कुछ देश मान्यता भी दे देते हैं।"

इसमें कोई सन्देह नहीं कि शावेज की मृत्यु के बाद पिछले पाँच वर्षों के मादुरो के शासनकाल में देश की अर्थव्यवस्था पूरी तरह चरमरा गयी। महँगाई आसमान छू रही है और भारी संख्या में लोग देश से पलायन के लिए मजबूर हो गये हैं। लेकिन इसके लिए मादुरो सरकार की प्रशासनिक अक्षमता के साथ ही उन साजिशों का बहुत बड़ा योगदान है, जो वेनेजुएला के खिलाफ पिछले बीस वर्षों से अमरीका करता आ रहा है। 21 जनवरी से जो अशान्ति फैली है, उसकी वजह से अब तक जगह-जगह हुई मुठभेड़ों में 40 से ज्यादा लोग मारे जा चुके हैं। अमरीका के विदेश मंत्री माइक पोंपिओ आये दिन मादुरो सरकार के खिलाफ जहर उगल रहे हैं और रूस तथा चीन पर आरोप लगा रहे हैं कि इन दोनों देशों ने एक 'विफल सरकार' को बढ़ावा दिया है। सेना पूरी तरह राष्ट्रपति मादुरो के साथ है। लेकिन अगर इसमें फूट पड़ गयी, जिसकी कोशिश लगातार अमरीका कर रहा है तो हालात और भी खराब हो सकते हैं। इस बीच वाशिंगटन में तैनात वेनेजुएला के सैनिक प्रतिनिधि ने पाला बदल दिया है और मादुरो सरकार के बजाय स्वघोषित राष्ट्रपति गोइदो के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त की है।

कुल मिलाकर वेनेजुएला की स्थिति बेहद गम्भीर बनी हुई है। अन्तरराष्ट्रीय प्रेक्षकों का मानना है कि अगर निकट भविष्य में संकट का कोई समाधान नहीं ढूँढा गया और अमरीका ने सैनिक हस्तक्षेप का निर्णय ले लिया तो समूची दुनिया एक नये युद्ध की चपेट में आ जायेगी। वैसे, चीन और रूस के पास वीटो का अधिकार होने की वजह से यह उम्मीद की जा सकती है कि अमरीका पर शायद सुरक्षा परिषद का दबाव बना रहे।

30 जनवरी को अमरीका की एक और घोषणा ने समूची स्थिति को काफी जटिल बना दिया है। पहले तो इसने वेनेजुएला की सरकारी तेल कम्पनी पीडीवीएसए पर प्रतिबन्ध लगाते हुए वेनेजुएला की सेना से सत्ता के शान्तिपूर्ण हस्तान्तरण को स्वीकार करने के लिए कहा और जब उसकी इस बात पर सेना ने ध्यान नहीं

दिया तो उसने अमरीकी बैंकों में मौजूद खातों का नियंत्रण खुआन गोइदो को देने की घोषणा की। इसका अर्थ यह हुआ कि वेनेजुएला के तेल की बिक्री का पैसा मादुरो की सरकार तक नहीं पहुँचेगा। गोइदो भी यही चाहते थे कि तेल की सम्पत्ति से होने वाली कमाई पर उनका नियंत्रण हो जाये। स्मरणीय है कि दुनिया का सबसे बड़ा तेल उत्पादक देश वेनेजुएला अपने तेल की बिक्री के लिए अमरीका पर काफी हद तक निर्भर है। वह अपने तेल निर्यात का 41 प्रतिशत अमरीका को बिक्री करता है। इतना ही नहीं, बल्कि वह अमरीका को कच्चा तेल देने वाले दुनिया के चार सबसे बड़े उत्पादक देशों में भी शामिल है। अमरीका द्वारा गोइदो के हाथ में तेल से होने वाली आय का नियंत्रण देने के बाद वेनेजुएला सरकार ने कुछ एहतियाती कदम उठाये हैं। वेनेजुएला के अटार्नी जनरल तारेक विलियम सआब ने देश की सुप्रीम कोर्ट से कहा कि गोइदो के देश छोड़ने पर प्रतिबन्ध लगाया जाये और उनकी सम्पत्तियों को फ्रीज कर दिया जाये। अभी सुप्रीम कोर्ट ने कोई आदेश जारी नहीं किया है, लेकिन मादुरो के प्रति उसके झुकाव को देखते हुए कहा जा सकता है कि सुप्रीम कोर्ट यह आदेश जारी कर देगा।

अमरीकापरस्त अनेक विश्लेषकों की दलील है कि मादुरो सरकार के अन्तर्गत देश ऐसी बदहाल स्थिति में पहुँच गया था कि अमरीका के लिए हस्तक्षेप करना जरूरी हो गया। वे लोग इस तथ्य को छुपा रहे हैं कि अमरीका पिछले बीस वर्षों से लगातार वेनेजुएला की सरकार के खिलाफ सक्रिय रहा है। दरअसल अमरीका ने हमेशा लातिन अमरीकी देशों को अपना 'बैक यार्ड' माना और वहाँ वह ऐसी किसी सरकार को बर्दाश्त नहीं कर पाता है, जिसकी नीतियाँ समाजवादी हों। अतीत में लातिन अमरीकी देशों में अमरीका ने कब-कब हस्तक्षेप किया है, उनका दस्तावेज अगर तैयार किया जाये तो वह पूरा ग्रन्थ बन जायेगा। वेनेजुएला में भी 1998 में ह्यूगो शावेज की सरकार के सत्ता में आने के बाद से ही अमरीका की सक्रियता बढ़ गयी, क्योंकि शावेज ने आते ही सबसे पहले विदेशी लूट पर रोक लगायी। उन्होंने बड़े उद्योगों का राष्ट्रीयकरण किया, भूमि सुधार कार्यक्रम के अन्तर्गत बड़े पैमाने पर भूमिहीनों के बीच जमीन का वितरण किया और अमरीकी कम्पनियों की बेलगाम लूट को रोका।

जो लोग आज मादुरो सरकार की असफलता की वजह से अमरीकी हस्तक्षेप को जायज ठहरा रहे हैं, उनके पास इसका कोई जवाब नहीं है कि जिस समय शावेज की नीतियों के फलस्वरूप वहाँ के लोगों की स्थिति काफी बेहतर हो गयी थी, तब अमरीका ने क्यों हस्तक्षेप किया था। स्मरणीय है कि 2002 में एक साजिश के तहत अमरीका ने शावेज का अपहरण तक करा लिया था और चैम्बर ऑफ कामर्स के अध्यक्ष पेद्रो कारमोना को राष्ट्रपति घोषित कर दिया था। अमरीका की यह साजिश महज 48 घण्टे तक ही कामयाब रह सकी और व्यापक जनविद्रोह ने शावेज को फिर सत्तारूढ़ कर दिया। शावेज से अमरीका क्यों नाराज था, इसके लिए उन दिनों की कुछ उपलब्धियों पर गौर करना प्रासंगिक होगा। 2005 में संयुक्त राष्ट्र की संस्था यूनेस्को ने बाकायदा इस तथ्य की पुष्टि की कि वेनेजुएला में कोई भी अशिक्षित नहीं रहा। 1998 से 2011 के बीच स्कूलों में प्रवेश लेने वाले बच्चों की संख्या जहाँ साठ लाख से बढ़कर एक करोड़ तीस लाख हो गयी, वहीं 2000 में विश्वविद्यालय में पढ़ने वाले छात्रों की जो संख्या 8,95,000 थी वह बढ़कर 2011 तक 20,30,000 हो गयी। शिक्षा के साथ जन स्वास्थ्य कार्यक्रमों को शावेज ने बड़े पैमाने पर लागू किया। 1999 में एक लाख की जनसंख्या पर डॉक्टरों की संख्या बीस थी, जो 2010 में उतनी ही जनसंख्या पर बढ़कर 80 हो गयी, यानी 400 प्रतिशत की बढ़ोतरी। इसी तरह शिशु मृत्यु दर प्रति हजार पर 19 थी, जो 2012 तक घटकर दस रह गयी। लोगों को आवास की सुविधा के मामले में भी शावेज ने एक रिकॉर्ड कायम किया। सत्ता में आने के बाद 13 वर्षों के अन्दर जनता को 7 लाख से अधिक घर बनाकर आवंटित किये गये। भूमि सुधार कार्यक्रम के अन्तर्गत 30 लाख हेक्टेयर भूमि का वितरण हुआ, जिसमें तकरीबन एक लाख हेक्टेयर भूमि वहाँ के आदिवासियों के बीच बाँटी गयी। 1998 में बेरोजगारी की दर 15.2 प्रतिशत थी, जो 2012 में घटकर 6.4 प्रतिशत रह गयी। काम के घण्टों में कमी की गयी और मजदूरों को तरह-तरह की राहत दी गयी।

शावेज को क्यूबा के फिदेल कास्त्रो का जबर्दस्त समर्थन प्राप्त था और अमरीका के लिए यह चिन्ता की बात थी। इतना ही नहीं, शावेज ने लातिन अमरीकी और कैरेबियन देशों के समुदाय को एकजुट करते हुए 'सेलाक' (कम्युनिटी ऑफ लातिन अमरीकन ऐण्ड कैरीबियन स्टेट्स) का गठन किया, जो अमरीका के प्रभुत्व वाले ओएएस (आर्गेनाइजेशन ऑफ अमरीकन स्टेट्स) का मुकाबला करने के लिए स्थापित किया गया था। उन दिनों वेनेजुएला की हैसियत एक खुशहाल राष्ट्र की थी। इन सबके बावजूद अमरीका ने इस हद तक वेनेजुएला को परेशान किया कि संयुक्त राष्ट्र की बैठक में शावेज ने तत्कालीन अमरीकी राष्ट्रपति जार्ज बुश को 'शैतान' विशेषण से सम्बोधित किया, जिसकी पूरी दुनिया में चर्चा हुई। उन दिनों अमरीका की राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार कोंडालिजा राइस और शावेज के बीच आये दिन हो रही तीखी नोक-झोंक लगातार अखबारों की सुर्खियाँ बनी रहीं। कहने का तात्पर्य यह है कि अमरीका कभी नहीं चाहता कि लातिन अमरीका के किसी भी देश में कोई ऐसी सरकार स्थापित हो, जो पूँजीवाद के खिलाफ कारगर कार्यक्रम ले सके। वेनेजुएला के सामने आज जो संकट पैदा हुआ है, उसके मूल में पूँजीवाद बनाम समाजवाद की ही लड़ाई है।

अप्रैल 2013 में शावेज की मृत्यु हुई और इसके बाद हुए

शेष पेज 57 पर...

फ्रांस का येलो-वेस्ट आन्दोलन

-- जुनूनी विशाल

फ्रांस में ईंधन-शुल्क में बढ़ोतरी के खिलाफ जबरदस्त विरोध प्रदर्शन किया गया। इस प्रदर्शन की शुरुआत 17 नवम्बर 2018 को अलग-अलग शहरों में हुई, जो कुछ महीनों तक जारी रहा। हालाँकि पेट्रोल व डीजल की कीमतों में बढ़ोतरी अन्य देशों में भी हुई है, लेकिन वहाँ की जनता ने फ्रांस जितना व्यापक विरोध नहीं किया। फ्रांस में लोगों ने पीली जैकेट पहनकर अपना रोष जताया, जिसे येलो-वेस्ट आन्दोलन का नाम दिया गया। लोगों ने आरोप लगाया कि सरकार के इस फैसले से उनका जीवन स्तर गिर जायेगा। पेट्रोल व डीजल की कीमतों में वृद्धि के लिए सरकार ऐसे-ऐसे बहाने कर रही है, जिनका जमीनी धरातल पर सच्चाई से दूर-दूर का वास्ता नहीं, जैसे-- इससे प्रदूषण कम होगा, अर्थव्यवस्था मजबूत होगी, जबकि सरकार ने साल 2007-08 में डीजल से चलने वाली गाड़ियों को खरीदने के लिए प्रोत्साहन दिया था और कहा था कि देश में प्रदूषण विरोधी डीजल उपलब्ध है, जिससे पर्यावरण को कोई नुकसान नहीं होगा।

इस आन्दोलन के माध्यम से फ्रांस की जनता ने इमैनुएल मैक्रोन के इस्तीफे की माँग की, जो 19 महीने से फ्रांस के राष्ट्रपति हैं। मैक्रोन की नीतियाँ बहुसंख्यक जनता के हित में नहीं हैं। शुरू में मैक्रोन ने जनता को गुमराह करने के लिए कहा था कि इस फैसले से कॉरपोरेट के अन्दर की गन्दगी को साफ करने में मदद मिलेगी, जिससे देश की मूलभूत संरचनात्मक समस्या हल हो जायेगी। मैक्रोन के अनुसार ईंधन की कीमतों में वृद्धि देश की अर्थव्यवस्था को मजबूती प्रदान करेगी। यह लोगों को कार्बन-डाई ऑक्साइड के उत्सर्जन में कमी के लिए बाध्य करेगी। लेकिन सच यह है कि कार्बन-डाई ऑक्साइड का अधिक मात्रा में उत्सर्जन बड़ी कम्पनियाँ ही करती हैं, जो अपने मुनाफे के लिए पर्यावरण का विनाश करती हैं, जिससे पृथ्वी के अस्तित्व पर खतरों के बादल मंडरा रहे हैं।

इस आन्दोलन में भाग लेने वाले अधिकांश लोग देहात और छोटे शहरों से थे। प्रदर्शनकारियों ने शहरों की बड़ी इमारतों, शॉपिंग मॉलों में तोड़फोड़ की। ये वे स्थान हैं, जहाँ पर मध्यम वर्ग के लोगों का आना-जाना लगा रहता है। उन्होंने फ्रांस की प्रतिष्ठित जगहों को अपने निशाने पर लिया, ताकि वे सरकार को इस बात का एहसास दिला सकें कि निम्न और गरीब तबके के लोगों के शोषण की नीति को बढ़वा देने पर वे किसी भी हद तक जा सकते हैं। उन्होंने राजधानी पेरिस में स्थापित मरियम की मूर्ति को क्षति पहुँचायी। साथ ही ऐतिहासिक धरोहर वाले स्थानों पर भी तोड़-फोड़ करके अपने गुस्से को प्रकट किया। ये सिलसिला यहीं नहीं रुका, प्रदर्शनकारियों ने शहरों की मुख्य सड़कों को पूरी तरह से बाधित किया। उन्होंने रेल लाइनों और ट्रामों के रास्तों को भी अपने कब्जे में ले लिया। इस आन्दोलन का असर इतना व्यापक था कि इसके समर्थन में बेल्जियम के ब्रुसेल्स और कनाडा के कई शहरों में भी लोगों ने पीली जैकेट पहनकर प्रदर्शन किया।

प्रदर्शनकारियों द्वारा विरोध जताने का तरीका इतना उग्र और हिंसक था कि लोगों ने कई गाड़ियों में आग लगा दी। पुलिस द्वारा किये गये हमले का भी प्रदर्शनकारियों ने डटकर मुकाबला किया। प्रदर्शनकारियों ने बर्फ पर फिसलने के दौरान प्रयोग किये जाने वाले मास्क और चश्में का भी उपयोग किया, ताकि वे पुलिस द्वारा छोड़ी जा रही गैसों का सामना कर सकें। प्रदर्शन के चलते अन्य देशों से आने वाले पर्यटकों की संख्या भी घट गयी। दूसरे देशों की सरकारों ने पर्यटकों के फ्रांस जाने पर भी रोक लगा दी। मैक्रोन की सरकार ने व्यापार सुधार के लिए भी कदम उठाये थे, जिसके तहत श्रम कानून में बदलाव करना जरूरी था। निवेश के लिए देश में बेहतर माहौल बनाने के नाम पर मजदूरों के अधिकारों में कटौती की गयी, जिसके खिलाफ मजदूरों ने भी विरोध में हिस्सा लिया।

प्रदर्शनकारियों की माँगों पर गौर करें तो पता चलता है कि उनकी माँगें केवल ईंधन-शुल्क में कमी की ही नहीं, बल्कि सरकार द्वारा व्यापार सुधार के लिए उठाये गये कदम के खिलाफ भी हैं। सरकार ने अमीरों और व्यापारियों को करों में छूट दी थी, जिसको वापस लेना उनकी माँगों में शामिल है। प्रदर्शनकारियों की माँग में ईंधन शुल्क को घटाने के साथ-साथ सामाजिक और आर्थिक असमानता को दूर करना, पेंशन की राशि को बढाना, महँगाई को कम करना और न्यूनतम वेतन को बढ़ाना आदि भी शामिल थे।

इस आन्दोलन में फ्रांस के अलग-अलग शहरों से लगभग 2,82,000 लोगों ने हिस्सा लिया। येलो वेस्ट आन्दोलन को फ्रांस

की लगभग 70-75 प्रतिशत जनता का समर्थन प्राप्त था। आन्दोलन को दबाने के लिए फ्रांस की सरकार ने देशभर में लगभग 89,000 पुलिस बल तैनात कर दिया। लगभग 8,000 पुलिस बल केवल पेरिस में तैनात किया, ताकि आन्दोलन में शामिल होने वाले लोगों को हिरासत में लिया जा सके। पुलिस बल ने आन्दोलन को कुचलने के लिए प्रर्दशनकारियों पर लाठीचार्ज,आँसू गैस के गोले और पानी की तेज धार का प्रयोग किया। आन्दोलन के दौरान पुलिस द्वारा 1723 प्रदर्शनकारियों को गिरफ्तार किया गया। प्रदर्शनकारियों और पुलिस के बीच सघर्ष में लगभग 1320 प्रदर्शनकारी और 300 पुलिसकर्मी घायल हुए। सरकार द्वारा भारी दमन के बावजूद प्रदर्शनकारियों ने अपना इरादा नहीं बदला। उन्होंने पूरे जोश के साथ आन्दोलन जारी रखा। सरकार द्वारा आपातकाल लागू करने की भी धमकी दी गयी, लेकिन इसका लोगों पर कोई असर नहीं हुआ।

प्रदर्शन में शामिल लोगों ने सरकार की नीतियों के विरोध में प्लेकार्ड, तख्तियों और सड़कों के किनारे बनी दीवारों पर नारे लिखकर सरकार को चेताया और अपने विचारों को प्रकट किया। प्रदर्शनकारियों के नारे थे-- कम्युनिज्म का इन्तजार करने तक, कुछ नगदी के लिए लड़ो; जनता की सबसे खतरनाक दुश्मन-- उनकी सरकार; जब वे कहें शान्ति और सुरक्षा, समझो दुनिया लूट गयी; तुमको गोबर चाहिए, मिलेगा, बुर्जुआ को नचाओ; अमीरों! खबरदार, गरीब विद्रोह शुरू कर चुके हैं; बुर्जुआ के लिए क्रिसमस नहीं; योजना-- प्रथम चरण : राष्ट्रपति भवन, दूसरा चरण : पूरी दुनिया; सत्ता पुलिस के बल पर टिकी है, आदि।

ये नारे स्पष्ट करते हैं कि प्रदर्शनकारियों के सपने और आदर्श क्या हैं तथा वे अपने संघर्ष में कितने दृढ़ हैं। वे सरकार के आगे घुटने टेकने वाले नहीं हैं। फ्रांस की सरकार इस आन्दोलन के विस्तार को देखकर दंग रह गयी। इस आन्दोलन को संचालित करने वाला कोई नेता नहीं था। यह आन्दोलन पूरी तरह से स्वतःस्फूर्त आन्दोलन था। इस स्वतःस्फूर्त आन्दोलन ने सरकार को अपने फैसले वापस लेने के लिए मजबूर कर दिया। सरकार ने ईंधन पर लगाये गये शुल्क को वापस ले लिया, साथ ही प्रदर्शनकारियों द्वारा रखी गयी कुछ दूसरी माँगों को भी मान लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि फ्रांस की सरकार को साम्राज्यवादी मीडिया की आलोचना का शिकार होना पड़ा। फ्रांस के इस आन्दोलन ने यह बात फिर से सिद्ध कर दी कि जब-जब मजदूर वर्ग के अधिकारों को छीनने और शोषण की हदों को पार करने का प्रयास किया जायेगा, तब-तब यह वर्ग उठ खड़ा होगा। जिस देश की जनता अपने इतिहास के संघर्षों को याद रखती है और उस राह पर चलने से जरा भी नहीं कतराती, उस देश की जनता का ज्यादा समय तक शोषण नहीं किया जा सकता। फ्रांस की जनता ने इस आन्दोलन से यह स्पष्ट कर दिया है। हम जानते हैं कि फ्रांस की क्रान्ति में शोषित लोगों ने पुरानी सड़ी-गली व्यवस्था को उखाड़ कर नयी व्यवस्था लागू की थी।

आज अलग-अलग देशों में वहाँ की जनता अपने हक के लिए आन्दोलन कर रही है। सरकारों द्वारा आन्दोलनों को कुचलने का प्रयत्न किया जा रहा है, लेकिन जनता के आगे उन्हें झुकना ही पड़ता है। दुनियाभर में बढ़ रहे आन्दोलन यह दर्शाते हैं कि किसी देश में लागू होने वाली नीतियाँ व्यापक जनता के पक्ष में न होकर चन्द लोगों की खिदमत करने के लिए बनायी जा रही हैं। इन नीतियों से देश के अमीर और अमीर हो रहे हैं तथा गरीब और अधिक गरीब। लोगों का धैर्य जवाब दे रहा है। वे संघर्ष की राह पर उतर रहे हैं। यह एक सकारात्मक शुरुआत है।

पेज 55 का शेष ...

चुनाव में उनके उत्तराधिकारी निकोलस मादुरो ने सत्ता की बागडोर सम्भाली। मादुरो ने भी उन्हीं नीतियों को आगे बढ़ाया, जिनकी शुरुआत शावेज ने की थी। शावेज का एक करिश्माई व्यक्तित्व था, जिसका लाभ उन्हें मिल रहा था। मादुरो के साथ ऐसी स्थिति नहीं थी। हालाँकि मादुरो को भी जनता का व्यापक समर्थन प्राप्त था। लेकिन दिसम्बर 2015 में हुए संसदीय चुनावों में विपक्षी डेमोक्रेटिक यूनिटी के गठबन्धन को संसद में बहुमत मिल गया और पिछले सोलह वर्षों से चला आ रहा सोशलिस्ट पार्टी का नियंत्रण समाप्त हो गया। ऐसे में मादुरो के खिलाफ संसद के जरिए अमरीकी साजिशों को अमल में लाना आसान हो गया।

31 जनवरी को इन पंक्तियों के लिखे जाने तक राष्ट्रपति मादुरो ने रूस की समाचार एजेंसी आरआइए से कहा है कि देश में फैली अराजक स्थिति को काबू में लाने के लिए वह विपक्षी दलों और खुआन गोइदो के साथ बातचीत के लिए तैयार हैं। उन्होंने यह भी ऐलान किया है कि सबकी सहमति से चुनावों के लिए एक तारीख भी तय की जा सकती है। स्थिति को और भी ज्यादा तनावपूर्ण रूप लेने से रोकने में उनकी यह पहल कारगर हो सकती है, बशर्ते अमरीका इसमें कोई अड़चन न डाले।

अफगानिस्तान से अमरीकी सैनिकों की वापसी के निहितार्थ

-- मोहित पुण्डिर

हाल ही में अमरीकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प ने अफगानिस्तान से सात हजार सैनिकों को वापस बुलाने का फैसला लिया है। सक्रिय सैन्य कार्रवाई में शामिल अमरीकी सेना का यह आधा हिस्सा है। ऐसा लग रहा है कि 18 सालों से जारी अमरीकी इतिहास का सबसे लम्बा युद्ध अब समाप्ति की ओर है। इस युद्ध में एक तरफ दुनिया की महाशक्ति अमरीका है, जिसके पास अत्याधुनिक हथियार और विशाल सैन्य ताकत है, वहीं दूसरी ओर आर्थिक रूप से बेहद कमजोर पश्चिम एशिया का एक ऐसा देश, जो पिछले चार दशक से युद्ध की भूमि बना हुआ है। इतने लम्बे युद्ध के बावजूद अब तक निर्णायक नतीजा नहीं निकल पाया। यह घटना दुनिया की महाशक्ति होने के अमरीकी अहंकार पर सवाल खड़ी करती है। आखिर अमरीका ने इस युद्ध से क्या हासिल किया, जिसके चलते 4 हजार अमरीकी सैनिकों की जान गयी और 20,00,000 करोड़ डॉलर से भी अधिक का खर्चा आया, जिसे अमरीकी जनता पर कर का बोझ लादकर वसूला गया था।

अफगानिस्तान में युद्ध का इतिहास बहुत लम्बा है। 1978 में जब सोवियत समर्थक 'पीपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी' सत्ता में आयी तो उसने व्यवस्था में बदलाव के लिए कई कदम उठाये, जैसे-- सरकार ने लोकतांत्रिक मूल्यों को प्राथमिकता देते हुए औरतों की पढ़ने की आजादी और रोजमर्रा की जिन्दगी में बराबरी का हक दिलाने के लिए कानून बनाया। लेकिन देश में इस्लामी के कानून के पैरोकार सरकार के खिलाफ हो गये। जमीन के बँटवारे से नाराज बड़े जमींदार भी सरकार के खिलाफ अपनी आवाज उठाने लगे। अमरीका इस सरकार के रहते अफगानिस्तान में कभी भी अपने साम्राज्यवादी मन्सूबों को पूरा नहीं कर सकता था, इसलिए उसने देश के अन्दरूनी झगड़े का फायदा उठाया। सरकार के खिलाफ लड़ रहे मुजाहिदीन संगठनों को अमरीका ने हथियार मुहैया किया था। उसने अपने मन्सूबों को पूरा करने के लिए अफगानिस्तान कट्टरपंथियों के हवाले कर दिया। सरकार के खिलाफ अनेकों कट्टरपंथी संगठनों ने अमरीका के सहयोग से ताकत हासिल की। आगे चलकर इन्हीं संगठनों में से एक 'तालिबान' देश की सत्ता पर काबिज हो गया, लेकिन जल्दी ही यह संगठन अमरीकी मन्सूबों के खिलाफ हो गया और उनकी कठपुतली बनने से इनकार कर दिया।

11 सितम्बर 2001 को अमरीका के वर्ल्ड ट्रेड सेंटर, ट्विन टावर्स और पेंटागन में आतंकी हमला हुआ, जिसमें हजारों बेगुनाह लोग मारे गये। अमरीका की साम्राज्यवादी मीडिया ने इसे लोकतंत्र पर हमला बताया। इस हमले को पूरी दुनिया में आतंकवाद की लहर के रूप में प्रचारित किया गया। तत्कालीन अमरीकी राष्ट्रपति जॉर्ज बुश ने इसका फायदा उठाते हुए अल-कायदा और तालिबान को दोषी करार दिया। अक्टूबर 2001 में अमरीका ने अफगानिस्तान पर हमला कर दिया और सालों चलने वाले युद्ध की शुरुआत कर दी। अमरीका दो महीनों में ही सत्ता से तालिबान को हटाने में तो सफल हो गया, लेकिन अफगानिस्तान पर उसकी पकड़ कम करने में वह आज तक सफल नहीं हो पाया है।

अफगानिस्तान के राष्ट्रपति असरफ घानी के अनुसार, 2015 के बाद से अब तक तालिबानी हमलों में लगभग 28 हजार अफगानी सैनिक मारे जा चुके हैं। यह संख्या पिछले सालों के मुकाबले कई गुना बढ़ी है। उनके अनुसार, अफगानिस्तान के 60 प्रतिशत हिस्से पर तालिबान अपना कब्जा जमा चुका है, जो अमरीकी हमले के समय से भी ज्यादा है। राजधानी के समीप गजनी शहर पर भी तालिबानियों ने कब्जा कर लिया है। अफगानिस्तान में अफीम की पैदावार आज अपने सबसे उच्चतम स्तर पर है। याद रहे कि तालिबान की आर्थिक जरूरतों का सबसे बड़ा स्रोत अफीम है। तालिबान आज सबसे मजबूत स्थिति में है। अमरीका ने इस युद्ध की शुरुआत के समय दावे किये थे कि वह तालिबान के खात्में के लिए हमला कर रहा है। लेकिन 18 साल लगातार युद्ध के बावजूद अमरीका अपने घोषित उद्देश्य से दूर जा चुका है।

अमरीकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प 'अमरीका को दुबारा महान बनाओ' का नारा दे रहे हैं और युद्ध की समाप्ति को इसी की कड़ी के रूप में पेश किया जा रहा है। लेकिन तथ्य इस बात की गवाही देते नजर नहीं आ रहे हैं। ट्रम्प की सरकार ने ही 2017 में यह घोषणा की थी कि वह अफगानिस्तान में 3 हजार अतिरिक्त सैनिक भेजेगी और तालिबान के खिलाफ युद्ध को और तेज करेगी। लेकिन बीते सालों में तालिबान की स्थिति पहले से कहीं अधिक मजबूत है, जिसके चलते अमरीका तालिबान के साथ युद्ध में किसी निर्णायक स्थिति में नहीं पहुँच पाया। अफगानिस्तान में

मिली लगातार असफलताओं ने अमरीका को तालिबान से बातचीत करके हल निकालने पर मजबूर कर दिया। अमरीकी सैनिकों की वापसी के बारे में ट्रम्प का निर्णय तब आया, जब आबूधाबी में अमरीकी अधिकारी तालिबानी दूतों से बातचीत कर रहे थे। इस मोर्चे पर भी तालिबान झुकता नजर नहीं आया। तालिबान ने अफगानिस्तान की वर्तमान सरकार को 'अमरीकी पिट्ठू' कहकर खारिज कर दिया और किसी भी तरह की बातचीत से साफ मना कर दिया। तालिबान की तरफ से आये प्रतिनिधि ने कहा कि अफगानिस्तान में शान्ति न होने का सबसे बड़ा कारण अमरीकी हस्तक्षेप है। उसने यह भी कहा कि अमरीका अपने विमानों से अफगानिस्तान की धरती पर बम गिराना बन्द करे। अमरीका की ही एक रिपोर्ट के मुताबिक, 2018 के शुरुआती 6 महीनों में अमरीकी विमान बमों से 1,700 निर्दोष अफगानियों की जान गयी और दोनों तरफ की कार्रवाई में लगभग 4 हजार लोग मारे गये, जिनमें 927 बच्चे भी शामिल थे। अमरीका ने केवल 2018 में ही इतने बम गिराये, जितने पूरे 17 सालों में नहीं गिराये गये। इसके चलते तालिबान का साफ कहना है कि जब तक अफगानिस्तान से एक-एक अमरीकी सैनिक वापस नहीं जाते, वह किसी भी शान्ति समझौते को नहीं मानेगा।

अमरीका ने अपनी साम्राज्यवादी नीतियों के चलते दुनियाभर में जितने अत्याचार किये हैं, उसकी सूची बहुत लम्बी और खून से सनी हुई है। ग्वाटेमाला में अमरीका द्वारा स्थापित तानाशाह ने 1954 में हजारों किसानों को मौत के घाट उतार दिया। 1980 में निकारागुआ में 30 हजार नागरिक मारे गये। इराक के 10 लाख लोग, जिनमें 5 लाख बच्चे भी थे, अमरीकी आर्थिक प्रतिबन्ध के चलते भूख और बीमारी से तड़प-तड़प कर मर गये। वियतनाम में उसने जो कहर बरपाया उसे सभी जानते हैं। हालाँकि वहाँ से बुरी तरह हारकर भागा।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद यूरोप के पुनर्निमाण के लिए बनी योजना (मार्शल प्लान) में लगे पैसों से भी ज्यादा अमरीका इस युद्ध में झोक चुका है, लेकिन तालिबान को झुकाने में कामयाब नहीं हो सका। दुनिया के सामने अमरीका इस युद्ध की सार्थकता दिखाने के लिए हमेशा झूठ बोलता आया है। 2017 में अमरीकी अधिकारियों ने दावा किया कि उन्होंने अफगानिस्तान सरकार के साथ मिलकर तालिबान के लगभग 13 हजार लडाकों को मार गिराया है या गिरफ्तार कर लिया है। इस झूठ का जल्दी ही पर्दाफाश हो गया। अफगानिस्तान सरकार ने खुद स्वीकार किया कि तालिबानी लड़ाकों की संख्या 77 हजार से भी ज्यादा है। अपने असली मन्सूबों को छुपाकर अमरीका मानवतावादी होने का ढोंग करने से भी नहीं चूकता। अफगानिस्तान युद्ध के विध्वंश को भी वह इसी मानवतावादी लिबास में छुपाना चाहता है। अमरीका दावा करता है कि उसने अफगानिस्तान में जीवन स्तर को बढ़ाया है। इसके लिए उसने अफगानिस्तान में जनता की चेतना ऊपर उठाने और प्रत्यक्षतः कम हुए मातृ मृत्यु दर का हवाला दिया। अमरीकी अधिकारियों के अनुसार, 2002 में प्रति एक लाख माताओं में से 1,600 की मृत्यु हो जाती थी, जो 2010 में मात्र 327 रह गयी। लेकिन यह दावा सच्चाई से कोसों दूर है। आयरिश और ब्रिटिश संस्थाओं की रिपोर्ट में यह संख्या 1,575 बतायी गयी है। इसी तरह का झूठ अफगानिस्तान में आयु सीमा में हुई बेहिसाब बढ़ोतरी को लेकर बोला गया, जिसकी पोल भी जल्दी ही खुल गयी।

लेकिन अमरीकी हस्तक्षेप की असली वजह एकदम साफ है। पश्चिम एशिया तेल की अकूत सम्पदा से भरा हुआ है, जिस पर अमरीका अपना एकाधिकार कायम करना चाहता है। इसी मकसद से उसने इराक पर हमला किया और यह झूठ फैलाया कि इराक गुपचुप रासायनिक हथियारों का निर्माण कर रहा है, जिससे वह पूरी दुनिया के लिए खतरा बन जायेगा। तालिबानी आतंकवाद और ओसामा बिन लादेन के सफाये के नाम पर अफगानिस्तान में किया गया हमला भी इसी कड़ी का शुरुआती हिस्सा है। उसका मूल उद्देश्य कैस्पियन सागर के द्रोणी क्षेत्र (बेसिन) के विशाल तेल भण्डार तक अपनी पहुँच सुनिश्चित करना है। पश्चिम एशिया के बाद दुनिया का सबसे बड़ा तेल भण्डार कैस्पियन सागर क्षेत्र में ही है, जिसपर अमरीका की गिद्ध-दृष्टि टिकी हुई है। व्यापार करने के लिए उसे अफगानिस्तान की धरती से तेल की पाइप लाइन गुजारनी होगी। इसी कारण अमरीका पिछले 18 सालों से अफगानिस्तान पर अपनी औपनिवेशिक सत्ता थोपने में लगा हुआ है।

लेकिन बार-बार की असफलता के चलते वह हिम्मत हार चुका है। पश्चिम एशिया में उसे जबरदस्त हार का सामना करना पड़ा है। अब उसकी मन्शा है कि किसी तरह इज्जत बचाकर वहाँ से कैसे भागा जाये।

एक रिपोर्ट के मुताबिक, अमरीका के दो लाख से अधिक सैनिक अलग-अलग कारणों से दुनिया के 180 देशों में फैले हुए हैं। लेकिन अत्याधुनिक हथियारों के बावजूद वियतनाम युद्ध से लेकर अफगानिस्तान तक अमरीका को हार का चेहरा ही देखना पड़ा है। आज के दौर की सच्चाई यही है कि किसी एक साम्राज्यवादी देश के द्वारा किसी भी देश को प्रत्यक्ष उपनिवेश बनाकर या कठपुतली शासन कायम करना सम्भव नहीं। देशी-विदेशी पूँजी के गठजोड़ से आर्थिक नवउपनिवेश कायम कर के ही किसी देश की प्राकृतिक सम्पदा और श्रम की लूट सम्भव है। राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष के इतिहास से सबक लेने के चलते आज किसी भी देश की जनता अपने ऊपर विदेशी शासन को बर्दाश्त नहीं कर सकती।

चरण पखारो कुम्भ : इन 'पानी परात को हाथ छुयो नहीं' स्टाइल

-- अंशु मालवीय

कुम्भ मेले में सफाई कर्मियों की बस्ती के पास से गुजरते हुए आप की निगाहें फटी हुई चादरों या अखबारों पर पड़ी सूखी रोटियों या पूरियों पर चली जाती है। जी, यह सफाई कर्मियों की बस्ती का सबसे परिचित दृश्य है। वे गाँव से भूख लेकर आये हैं और यहाँ से भूख लेकर ही वापस जा रहे हैं। दिहाड़ी बढ़ी नहीं, मिले हुए पैसे से जमादार ने गुण्डा टैक्स वसूल लिया, इस बार के बकाया पैसे नहीं मिले और तो और कम से कम 10 फीसदी लोग ऐसे हैं जिन्हें पिछले साल के भी पैसे मिले नहीं, राशन कार्ड बने नहीं और अगर बने तो 3 किलो चावल और 2 किलो गेहूँ में पूरे परिवार का पेट भरना नामुमकिन ठहरा... सैलानी वापस जा रहे हैं, तीर्थयात्रियों के पुण्य का बिल चुका कर। उनकी विदाई एक महान तमाशे के साथ हो रही है-- उनके राष्ट्र का मुखिया चार चुने हुए स्वच्छ ग्राहियों के पैर पखार रहा है-- इन सफाई कर्मियों को अपनी मेहनत से शायद चुनाव का बिल भी चुकाना है।

चाहे आत्महत्या करते किसान हों या पुलवामा के शहीद या उदाहरण के तौर पर इलाहाबाद के अर्धकुम्भ के सफाई मजदूर; हर मुद्दे पर सरकार का एक ही रुख है-- असली दृश्य को एक बनावटी अलंकार से ढकने की कोशिश। किसान के मुद्दे पर सरकार दोगुनी आय और कर्जमाफी या कांग्रेस की असफलताओं का विराट नैरेटिव तैयार करती है। पुलवामा की दुर्घटना में अपराधिक चूक को वह युद्धोन्माद और राष्ट्रवाद के शोर से ढकना चाहती है। और अब अर्ध कुम्भ के सफाई मजदूर३ छवि जीवक प्रधानमंत्री अपने को आधुनिक कृष्ण के रूप में प्रस्तुत करते हुए सफाई कर्मियों के पैर पखार रहे हैं। पार्टी की दलित विरोधी छवि से उसे निकालने की दयनीय कोशिश। भक्तगण कह रहे हैं 'मास्टर स्ट्रोक'... और सफाई कर्मचारी आन्दोलन के नायक बेजवाड़ा विल्सन कहते हैं कि यह दलित गरिमा का अपमान है।

तथाकथित कुम्भ में खींची गयी इस ऐतिहासिक फोटो के रेशे पाखंड से बने हुए हैं। आइए, इन रेशों को उघाड़कर देखें। सफाई कर्मी आशादीन जी छतरपुर (मध्य प्रदेश) के निवासी हैं, जिनके दाहिने हाथ की बाह कुम्भ मेले में तोड़ दी गयी, सिर्फ बाल्टी छू जाने मात्र के चलते एक साधु के हमले से। युवा सफाई कर्मी ननकाई पुत्र लोला फतेहपुर की, जगुआ पुत्र जगदेव बाँदा जैसे कई सफाई कर्मियों की ठंड से कुम्भ में मौत हुई और किसी तरह की कोई मदद नहीं मिली। यहाँ तक की न्यूनतम छोड़िये उन्हें वह वेतन अभी तक नहीं मिला है, जो मेठ ने गाँव से दिलाने की बात कहकर यहाँ लिवा लाया है और रहने के टेन्ट, इलाज वगैरह की तो बात ही न करिये। उन्हीं सब मूलभूत माँगों को लेकर सफाई कर्मी 26 जनवरी 2019 से मेला अधिकारी के दफ्तर पर जमा हुए थे। मेला अधिकारी विजय किरण आनंद ने पूरी प्रशासनिक ठसक से बताया कि हाँ, आपकी माँग मान ली गयी है। दिहाडी 15 रुपये बढ़ा दी गयी है। सभी सफाई कर्मचारी व्यंग्य से मुस्कुरा दिये। 4200 करोड़ रुपये की गंगा की धार सफाई कर्मियों तक आते-आते सूख गयी।

प्रशासन की बेरुखी ने सफाई कर्मियों का गुस्सा बढ़ा दिया। दिन में 14-14 घंटे खुले आसमान के नीचे ठंड में काम करने के बाद प्रशासन के इस दो टूक जवाब ने उन्हें कुछ कार्रवाई के बारे में सोचने के लिए मजबूर कर दिया। तय हुआ कि सफाई मजदूर 2 फरवरी को मेला अधिकारी के दफ्तर पर प्रदर्शन करेंगे और ज्ञापन सौंपेंगे। इस प्रदर्शन को सफाई कर्मियों ने उत्साह में 'हड़ताल' का नाम दिया और हड़ताल के उत्साह में करीब डेढ़ हजार सफाई मजदूर 2 फरवरी की सुबह 6 बजे से इकट्ठा हो गये। करीब 10 बजे हमें वार्ता के लिए बुलाया गया और हमारे वार्ता कक्ष में पहुँचते ही मेला अधिकारी ने आक्रामक तेवर में हमको रासुका लगाने की धमकी दे डाली। उनका आरोप था कि हमने सफाई मजदूरों को अनावश्यक रूप से भड़काया है, नहीं तो वे बेहद खुश हैं। बहरहाल, मेला अधिकारी आखिरकार जबानी ही सही 6 फरवरी तक हमारी माँगों पर निर्णय लेने के लिए समझौते तक पहुँचे। हमने उनसे कहा कि जो आश्वासन आप हमें दे रहे हैं, चलकर सफाई कर्मचारियों को भी दे दीजिए।

मेला अधिकारी विजय किरण आनंद को शायद अपने दल-बल लाव-लश्कर पर इतना गुमान था कि उन्होंने सोचा कि

'राष्ट्र', 'गंगा-मैया', 'पुण्य', 'सेवा' जैसे शब्द उछालेंगे और सफाई कर्मी चुप लगा जाएँगे। लेकिन सफाई कर्मियों ने साफ कह दिया– "पुण्य से पेट नहीं भरता साहेब।" आधे घंटे तक पसीना-पसीना होते मेला डीएम साहब लोगों को बहलाने की कोशिश करते रहे। लेकिन लोगों ने खूब खरी-खरी सुनाई। अपनी दिहाड़ी से लेकर काम के हालात तक हर बात पर मेला अधिकारी की बात को उन्होंने प्रमाण सहित काटा। मेलाधिकारी खीझ और झल्लाहट से भरकर वहाँ से चले गये। शायद यही खीझ थी जो उन्होंने हम पर उतारी, जब मुझे और सफाई कर्मचारी साथी दिनेश को 7 फरवरी को पुलिस की क्राइम ब्रांच ने एसएसपी के निर्देश पर उठा लिया और 6 घंटा अलग-अलग थानों में डिटेन करने के बाद छोड़ा। उसमें भी रासुका और सख्त कार्रवाई की धमकी शामिल थी।

अब वापस प्रधानमंत्री के चरण पखारते चित्र की ओर लौटें। 5 सफाई कर्मचारी नयी वर्दियों और नयी साड़ियों में और उनके चरण पखारते पी एम साहब। यह एक बन्द कमरा है, जिसमें एक लैब में नियंत्रित ताप और दाब में एक प्रयोग को अंजाम दिया जाता है, क्योंकि बाहर खुले में, मंच पर या भीड़ में यह प्रयोग करने पर वही खतरा है, जिससे मेला अधिकारी साहब रूबरू हो चुके हैं। यानी वहाँ भी वही हो सकता था, तीखे सवालों की झड़ी से स्वयं पी एम मुजस्सम धो दिये गये होते... चरण की तो बात ही दूर है। इसलिए यह प्रहसन बड़ी निजता से खेला गया। कौन है यह सफाई कर्मचारी जो सुदामा के रोल में थे... धीरे-धीरे सामने आ जाएगा।

प्रधानमंत्री जा चुके हैं... अखबार और टीवी चैनल उनके दलित प्रेम से भीगे-भीगे हैं। लेकिन सफाई कर्मी वहीं हैं, अपनी माँगों और अपने अंधेरे जीवन के साथ। उनकी वंचना को आप वोट की राजनीति के लिए इस्तेमाल कर सकते हैं-- लेकिन सुई की नोक जैसे उनके तीखे सवालों से पीछा नहीं छुड़ा सकते। यह पूरा प्रहसन तब और हास्यास्पद बन जाता है जब पता चलता है कि अपने पूरे कार्यकाल में मोदी सरकार ने सफाई कर्मियों के लिए एक धेला भी खर्च नहीं किया।

पैर पखारना... उन्हें नीचा दिखाना है और यह दलित बंधुता नहीं ब्राह्मणवाद है मोदी जी!

○

62 पेज का शेष...

पर हस्ताक्षर हुआ था।

भारत की तरफ से जो टीम बनी थी उसके अध्यक्ष वायुसेना के उपाध्यक्ष एयर मार्शल एस बी पी सिन्हा थे। उन्होंने प्रधानमंत्री कार्यालय के संयुक्त सचिव जावेद अशरफ को बताया कि ऐसी बातचीत हो रही है तो जावेद अशरफ ने जवाब में लिखा कि हाँ, बातचीत हुई थी। जावेद यह भी कहते हैं कि फ्रांस की टीम के मुखिया ने अपने राष्ट्रपति ओलान्द की सलाह पर उनसे चर्चा की थी और जनरल रेब के पत्र को लेकर भी चर्चा हुई थी। इसी पत्र के बारे में रक्षा मंत्रालय ने प्रधानमंत्री कार्यालय को लिखा था। आपको याद होगा कि सितम्बर 2018 में फ्रांस के पूर्व राष्ट्रपति ओलान्द ने एसोसिएट प्रेस से कहा था कि उन पर रिलायंस ग्रुप को शामिल करने का दबाव डाला गया था। उसके लिए नया फार्मूला बना था।

रक्षा मंत्रालय के नोट में प्रधानमंत्री कार्यालय की तरफ से होने वाली बातचीत को समानान्तर कार्यवाही बताया है। कहा है कि इससे भारतीय टीम की इस डील में दावेदारी कमजोर होती है। जब रक्षा मंत्रालय बातचीत कर ही रहा था तो बिना उसकी जानकारी के प्रधानमंत्री कार्यालय अपने स्तर पर क्यों बातचीत करने लगा। नोट में लिखा है कि इस तरह की समानान्तर बातचीत से फ्रांस के पक्ष को लाभ हो रहा था। जब बात सीधे प्रधानमंत्री कार्यालय से हो रही थी तो फ्रांस की साइड को भी संदेश चला ही गया होगा कि इसमें जो भी करना है प्रधानमंत्री करेंगे। रक्षा मंत्री या उनके मंत्रालय की कमेटी से कुछ नहीं होगा।

जनरल रेब अपने पत्र में लिखते हैं कि फ्रांस के कूटनीतिक सलाहकार और प्रधानमंत्री के संयुक्त सचिव के बीच जो बातचीत हुई है उसमें यह तय हुआ है कि कोई बैंक गारन्टी नहीं दी जाएगी। जो लेटर आफ कम्फर्ट है वह काफी है। उसे ही कम्पनी की तरफ से गारन्टी मानी जाए। इसी को लेकर सवाल उठ रहे थे कि बगैर सम्प्रभु गारन्टी के यह डील कैसे हो गयी। सरकार गोलमोल जवाब देती रही।

हिन्दी के करोड़ों पाठकों को इस डील की बारीकियों से अनजान रखने का षडयंत्र चल रहा है। संसाधनों और बेजोड़ संवाददाताओं से लैस हिन्दी के अखबारों ने रफाल की खबर को अपने पाठकों तक नहीं पहुँचने दिया है। आप पाठकों को यह नोट करना चाहिए कि आखिर ऐसी रिपोर्टिंग हिन्दी के अखबार और चैनल में क्यों नहीं होती है। तब फिर आप कैसे इस सरकार का और प्रधानमंत्री की ईमानदारी का मूल्यांकन करेंगे। मैं तभी कहता हूँ कि हिन्दी के अखबारों ने हिन्दी के पाठकों की हत्या की है। अब एक ही रास्ता है। आप इस खबर के लिए हिन्दू अखबार किसी तरह से पढ़ें। मैंने पर्याप्त अनुवाद कर दिया है। देखें कि अनिल अम्बानी के लिए प्रधानमंत्री मोदी किस तरह चुपचाप काम कर रहे थे। ○

रफाल पर हिन्दू की रिपोर्ट : 'अम्बानी के लिए रक्षा मंत्रालय और सुप्रीम कोर्ट से भी झूठ बोला प्रधानमंत्री ने!'

--रवीश कुमार

एन राम ने 'द हिन्दू' अखबार में रफाल डील से सम्बन्धित जो खुलासा किया है वह सन्न कर देने वाला है। इस बार एन राम ने रक्षा मंत्रालय के फाइल का वह हिस्सा ही छाप दिया है जिसमें इस बात पर सख्त एतराज किया गया था कि प्रधानमंत्री कार्यालय अपने स्तर पर इस डील को अंजाम दे रहा है और इसकी जानकारी रक्षा मंत्रालय को नहीं है। ऐसा किया जाना समानान्तर कार्रवाई मानी जाएगी जिससे इस डील के लिए बनायी गयी रक्षा मंत्रालय की टीम की स्थिति कमजोर होती है। यह खबर अब साफ कर देती है कि प्रधानमंत्री देश के लिए नहीं, अनिल अम्बानी के लिए चुपचाप काम कर रहे थे। वही अनिल अम्बानी जिनकी कम्पनी एक लाख करोड़ के घाटे में है और सरकारी पंचाट से दिवालिया होने का सर्टिफिकेट माँग रही है।

इस रिपोर्ट को समझने के लिए कुछ पक्षों को ध्यान में रखें। रफाल कम्पनी से बातचीत के लिए रक्षा मंत्रालय एक टीम का गठन करता है। उसी तरह फ्रांस की तरफ से एक टीम का गठन किया जाता है। दोनों के बीच लम्बे समय तक बातचीत चलती है। मोलभाव होता है। अचानक भारतीय टीम को पता चलता है कि इस बातचीत में उनकी जानकारी के बगैर प्रधानमंत्री कार्यालय भी शामिल हो गया है और वह अपने स्तर पर शर्तों को बदल रहा है। एन राम ने जो नोट छापा है, वह प्रधानमंत्री मोदी की भूमिका को साफ साफ पकड़ने के लिए काफी है। यही नहीं सरकार ने अक्टूबर 2018 में सुप्रीम कोर्ट से भी यह बात छिपायी थी कि इस डील में प्रधानमंत्री कार्यालय भी शामिल था। क्या यह सरकार सुप्रीम कोर्ट से भी झूठ बोलती है। इस नोट के अनुसार बिल्कुल झूठ बोलती है।

एन राम ने अपनी खबर के प्रमाण के तौर पर 24 नवम्बर 2015 को जारी रक्षा मंत्रालय के एक नोट का हवाला दिया है। रक्षा मंत्रालय की टीम ने रक्षा मंत्री मनोहर पर्रिकर के ध्यान में लाने के लिए यह नोट तैयार किया था। इसमें कहा गया है कि "हमें प्रधानमंत्री कार्यालय को सलाह देनी चाहिए कि रक्षा सौदे के लिए बनी भारतीय टीम का कोई भी अफसर जो इस टीम का हिस्सा नहीं है वह फ्रांस की तरफ से स्वतंत्र रूप से मोलभाव न करे। अगर प्रधानमंत्री कार्यालय को रक्षा मंत्रालय के मोलभाव पर भरोसा नहीं है तो उचित स्तर पर प्रधानमंत्री कार्यालय ही बातचीत की एक नयी प्रक्रिया बना ले।"

'द हिन्दू' अखबार के पास जो सरकारी दस्तावेज हैं उसके अनुसार रक्षा मंत्रालय ने इस बात का विरोध किया था कि प्रधानमंत्री कार्यालय ने जो कदम उठाये हैं वे रक्षा मंत्रालाय और उसकी टीम के प्रयासों को ठेस पहुँचाते हैं। उस वक्त के रक्षा सचिव जी मोहन कुमार ने अपने हाथ से फाइल पर लिखा है कि रक्षा मंत्री इस पर ध्यान दें। प्रधानमंत्री कार्यालय से उम्मीद की जाती है कि वह इस तरह की स्वतंत्र बातचीत न करे क्योंकि इससे भारतीय टीम की कोशिशों को धक्का पहुँचता है।

क्या प्रधानमंत्री कार्यालय को रक्षा सचिव पर भरोसा नहीं है, इस बातचीत के लिए बनी टीम के प्रमुख वायुसेना के उपाध्यक्ष पर भरोसा नहीं है? आखिर गुपचुप तरीके से प्रधानमंत्री कार्यालय ने बातचीत कैसे शुरू कर दी? क्या उनका संयुक्त सचिव अपनी मर्जी से ऐसा कर सकता है? तब तो दो ही बात हो सकती है। या तो आप पाठकों को हिन्दी पढ़नी नहीं आती है या फिर आप नरेंद्र मोदी पर आँखें मूँद कर विश्वास करते हैं। प्रधानमंत्री इस डील में देश के लिए रक्षा मंत्री, रक्षा सचिव और वायुसेना के उपाध्यक्ष को अँधेरे में रख रहे थे या फिर अनिल अम्बानी के लिए?

रक्षा मंत्रालय ने जो नोट भेजा था उसे उप सचिव एस के शर्मा ने तैयार किया था। जिसे खरीद प्रबंधक व संयुक्त सचिव और खरीद प्रक्रिया के महानिदेशक दोनों ने ही समर्थन दिया था। रक्षा मंत्रालय के इस नोट से पता चलता है कि उन्हें इसकी भनक तक नहीं थी। 23 अक्तूबर 2015 तक कुछ पता नहीं था कि प्रधानमंत्री कार्यालय भी अपने स्तर पर रफाल विमान को लेकर बातचीत कर रहा है।

इन नोट में लिखा है कि फ्रांस की टीम के प्रमुख जनरल स्टीफ रेब से प्रधानमंत्री कार्यालय बातचीत कर रहा था। इसकी जानकारी भारतीय टीम को 23 अक्तूबर 2015 को मिलती है। इस नोट में फ्रांस के रक्षा मंत्रालय के कूटनीतिक सलाहकार लुई वेसी और प्रधानमंत्री कार्यालय के संयुक्त सचिव जावेश अशरफ के बीच हुई टेलिफोन वार्ता का जिक्र है। यह बातचीत 20 अक्तूबर 2015 को हुई थी। आप जानते हैं कि अप्रैल 2015 में प्रधानमंत्री ने पेरिस में डील का एलान कर दिया था। 26 जनवरी 2016 को जब ओलान्द भारत आये थे तब इस डील को लेकर समझौता पत्र

शेष पेज 61 पर...

मृणाल सेन को श्रद्धांजलि

--गजेंद्र

ऋत्विक घटक और सत्यजीत रे के साथ मृणाल सेन ही थे जिन्होंने भारत में ऐसी फिल्मों का दौर शुरू किया जिनमें कहानियाँ बिलकुल यथार्थपरक होती थीं, उनमें कोई व्यवसायिक मनोरंजन की बाध्यता वाली मिलावट नहीं होती थी।

लेकिन वे बांधकर रखने वाली और बेहद जरूरी, वे विश्व स्तर के फिल्म आर्ट की बराबरी करने वाली होती थीं। ऐसी फिल्मों को आलोचकों ने समानन्तर सिनेमा कहना शुरू किया। इन फिल्मों की नींव सेन, रे, घटक व अन्य ने रखी। ये तीनों आपस में अच्छे-खासे प्रतिस्पर्धी थे लेकिन एक-दूसरे के काम को पसंद करते थे।

उस पीढ़ी के फिल्मकारों में मृणाल दा ही थे जो अब तक जीवित थे। लेकिन रविवार को 95 की उम्र में उनका भी निधन हो गया। कौन थे मृणाल दा, आइए जानें।

1. 2002 में 80 की उम्र में भी उन्होंने आमार भुवन नाम की एक फिल्म बनायी, वह भी फिल्ममेकिंग के प्रयोगों के साथ।

2. मिथुन चक्रवर्ती ने 1976 में जिस प्रशंसित फिल्म मृगया से अपनी यात्रा शुरू की थी और जिसके लिए उन्होंने बेस्ट एक्टर का नेशनल अवॉर्ड जीता था उसे मृणाल दा ने ही बनायी थी। उन्हें भी नेशनल अवॉर्ड प्राप्त हुआ था।

3. उन्होंने 20 के करीब नेशनल फिल्म अवॉर्ड जीते थे। विश्व सिनेमा में योगदान के लिए सोवियत संघ ने उन्हें 1979 में नेहरू-सोवियत लैंड अवॉर्ड से सम्मानित किया था। यही नहीं, उन्हें साल 2000 में रूस के राष्ट्रपति व्लादिमिर पुतिन ने अपने मुल्क का ऊँचा सम्मान 'ऑर्डर ऑफ फ्रेंडशिप' मृणाल सेन को दिया था। ये सम्मान पाने वाले वे अकेले इंडियन फिल्मकार हैं।

4. वे पद्म भूषण जैसे तीसरे सबसे ऊंचे नागरिक सम्मान से नवाजे गये थे।

5. उन्हें 2005 में भारत सरकार ने दादासाहेब फाल्के अवॉर्ड प्रदान किया जो भारत में फिल्मों का सबसे ऊँचा सम्मान है।

6. कोलंबिया मूल के ख्यात उपन्यासकार, लेखक, पत्रकार गेब्रिएल गार्सिया मार्क़ेज उनके दोस्त थे।

7. मृणाल दा फरीदपुर में 14 मई 1923 को जन्मे थे। ये जगह अब बांग्लादेश में है। स्कूल की पढ़ाई वहीं से की। फिर कलकत्ता के जाने-माने स्कॉटिश चर्च कॉलेज से फिजिक्स पढ़े। फिर कलकत्ता विश्वविद्यालय से।

8. छात्र जीवन में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की सांस्कृतिक शाखा से जुड़े लेकिन कभी सदस्य नहीं बने। बाद में एक फिल्मकार के तौर पर भी वे किसी विचारधारा से नहीं बंधे, हमेशा एक कलाकार के तौर पर मानवीय दृष्टिकोण से सोचते रहे।

9. उनकी 'नील आकाशेर नीचे' (1958) आजाद भारत की पहली फिल्म थी जिसे बैन कर दिया गया था। ये फिल्म महादेवी वर्मा की कहानी चीनी भाई पर आधारित थी।

इसमें ब्रिटिश राज के आखिरी दिनों की कहानी थी, 1930 के बाद के कलकत्ता की। यहाँ एक गरीब चीनी फेरीवाला वांग लू रहता है जो कलकत्ता की गलियों में चाइना सिल्क बेचता है। मजबूर पृष्ठभूमि से आया होता है। जब उसके देश चीन पर ताकतवर, साम्राज्यवादी जापान ने हमला बोला होता है। कहानी की अन्य प्रमुख पात्र है बसंती जो एक बैरिस्टर की बीवी है और वांग से आत्मानुभूति रखती है। उसके कष्टों को लेकर संवेदना रखती है।

पहले फिल्म रिलीज हुई तो लोगों को बहुत पसंद आई। यहाँ तक कि तब के प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने भी फिल्म को सराहा। इसने थियेटरों में अपना रन भी पूरा कर लिया। फिर जब भारत-चीन सीमा पर तनाव बढ़ने लगा तो एकदम से सूचना प्रसारण मंत्रालय वाले नींद से जागे और फिल्म पर रोक लगा दी गयी। फिल्म में भारत की अंग्रेजों के खिलाफ आजादी की लड़ाई और 1930 के दौर में चीनी लोगों की साम्राज्यवादी जापान के अतिक्रमण की लड़ाई को एक ही दिखाने की कोशिश थी। मृणाल ने बरसों बाद भी माना था कि फिल्म की इस टिप्पणी से वे इत्तेफाक रखते हैं कि किसी देश की आजादी की लड़ाई और एक प्रगतिवादी विश्व की फासीवाद के खिलाफ लड़ाई अलग-अलग नहीं होती। लेकिन 1962 में चीन-भारत तनाव के दौरान किसी ने ये संदर्भ समझा नहीं।

बाद में संसद में कम्युनिस्ट पार्टी के सांसद हीरेन मुखर्जी ने इसे लेकर टिप्पणी की। नेहरू और रक्षा मंत्री वीके कृष्णा मेनन वहीं थे। इन्होंने बाद में फिल्म पर से बैन हटवाया। ये बैन दो महीने चला था।

10. बैशे श्रावणा (विवाह का दिन) 1960 में प्रदर्शित हुई और बहुत कठोर फिल्म थी। विश्व युद्ध-2 से पहले की कहानी। बंगाल के एक गाँव में रहता है प्रियनाथ। पहले गाँव में उसका

परिवार समृद्ध था, अभी नहीं है। बूढ़ी माँ को खुश करने के लिए वह एक कम उम्र की लड़की से शादी कर लेता है। खुद रेल में सामान बेचने का काम करता है। फिर कष्ट टूट पड़ते हैं। विश्व युद्ध के कारण लोग गाँव से पलायन कर रहे होते हैं लेकिन वह और उसकी पत्नी वहीं रुकते हैं। भूख इन दोनों के रिश्ते की परीक्षा लेने लगती है। इस फिल्म को लेकर मृणाल दा ने बोला था।

वो एक क्रूर वक्त था और मैं एक क्रूर फिल्म बनाना चाहता था।

11. दुनिया में जितने टॉप फिल्म फेस्टिवल होते हैं। केन (फ्रांस), वेनिस, बर्लिन, शिकागो, मॉस्को, मोंट्रियल, कार्लोवी, कायरो सब में उनकी फिल्मों को चुना जाता रहा है और अवॉर्ड मिलते रहे हैं।

12. भुवन शोम (1969) उनकी सबसे उत्कृष्ट फिल्मों में से एक है। 'लगान' में भुवन (आमिर) की माँ का रोल करने वाली सुहासिनी मुले इस फिल्म में उत्पल दत्त के साथ प्रमुख भूमिका में थीं। इस फिल्म में उनका नाम गौरी था (लगान में भी हीरोइन का नाम यही था)। 'भुवन शोम' कोई आम साँचे वाली कहानी नहीं थी। यह एक गहरे निहितार्थों वाला व्यंग्य और अनूठा मनोरंजन थी। भुवन शोम, फिल्म में उत्पल दत्त प्रमुख पात्र की भूमिका में जो 50 साल का अधेड़ है। रेलवे में बड़ा अफसर है। एकाकी है। संवेदनाएँ नहीं है। जीवन जीता नहीं है। वह गुजरात के एक गाँव शिकार करने की छुट्टियाँ लेकर पहुँचता है। लेकिन उसने जीवन में जितनी विद्वता पायी थी वो यहाँ शून्य हो जाती है। यहाँ उसे गौरी नाम की गाँव की लड़की मिलती है जो न उसकी तरह पढ़ी लिखी है, न उसके पास बन्दूक है लेकिन व्यावहारिक तौर पर सब चीज उससे ज्यादा जानती है। ग्रामीण परिवेश के कपड़े पहनाती है ताकि पक्षी अनजान आदमी मानकर उड़ न जाएँ। ऐसी कई छोटी-छोटी चीजें वह करती है।

उसकी खुश रहने की फिलॉसफी भी है। इस लहर जैसी यात्रा के बाद भुवन शोम को जीवन में नयी दिशा मिलती। फिल्म इस कहानी से वर्णित नहीं की जा सकती। इस अनुभव को देखकर ही जिया जा सकता है।

13. भारत और दुनिया के शीर्ष फिल्म स्कूलों में मृणाल दा की फिल्में पढ़ाई जाती हैं। फिल्म स्टूडेंट्स के अलावा विश्व सिनेमा में रुचि रखने वाले लोगों के लिए भी भुवम शोम, मृगया, अकालेर संधाने, खंडहर, खारिज, अकाश कुसुम, कोरस, जेनेसिस, एक दिन अचानक जैसी फिल्में विशेष स्थान रखती हैं।

14. उन्होंने अपने वक्त की अमानवीय स्थितियों को दर्शकों के सामने रखा। उनकी फिल्मों में गरीबी, साम्राज्यवाद, अकाल, वर्गभेद, सामाजिक अन्याय, सूखा, गैर-बराबरी जैसे विषयों को देखा गया। इसे लेकर मृणाल सेन ने कहा था--

"मैं अपने खुद के वक्त को समझने की कोशिश करता हूँ और उसे सामने रखने की कोशिश करता हूँ।"

(लल्लनटॉप से साभार)

गुण्डा समय

इस गुण्डा समय में न मैं लाठी होना चाहता हूँ
न चाकू न पिस्तौल
इस गुण्डा समय में मैं अपने समय का
एक गुण्डा नहीं होना चाहता हूँ।

कयोंकि अगर मैं होना भी चाहूँ तो
एक गुण्डे का दोस्त हुए बिना मैं हो भी नहीं सकता
हो सकता है होकर मैं यह कहना चाहूँ
कि मैं हिन्दू हूँ

हो सकता है होकर मैं यह कहना चाहूँ
कि मैं एक मुसलमान हूँ

हो सकता है यह सब कुछ न कहकर
सिर्फ कहूँ कि मैं एक गऊ आदमी हूँ

हो सकता है कि होकर मैं इतना कहूँ
कि आदमी क्या हूँ सूअर हूँ

इस गुण्डा समय में जानवर होकर भी
घृणा का पात्र हुए बिना नहीं रह पाऊँगा मैं

कभी हिन्दू होकर किसी हिन्दू गुन्डे की प्रतीक्षा करूँगा
कभी मुसलमान होकर किसी मुस्लिम गुण्डे का इंतजार
जो मुझे जितनी बार आ आकर बचाएँगे
उतनी बार मारा जाऊँगा मैं
सारी व्यवस्थाओं का भरोसा छीनकर
इस गुण्डा समय में
न मैं मन्दिर में रहना चाहता हूँ न मस्जिद में

'मैं एक रहने योग्य घर में रहते हुए'
'कहने योग्य बात कहना चाहता हूँ'
'कि मैं धार्मिक नहीं एक मार्मिक सम्बन्ध हूँ'
'मैं मनुष्य हूँ। आदमी हूँ। व्यक्ति हूँ। नागरिक हूँ।'
'इस गुण्डा समय में हुए बिना'
'क्या मैं यह सब हो सकता हूँ?'
'अगर नहीं'
'तो फिर मैं नहीं हूँ। नहीं हूँ। नहीं हूँ।'

--लीलाधर जगुड़ी